

चिन्तन की नई दिशा

सुखबीर आर्य

धर्म-पालन एक शास्त्रोक्त कर्तव्य है। किन्तु, मनुष्य के जीवन का लक्ष्य भागवत संकल्प को चरितार्थ करना है। हमें धार्मिक कर्म करके ही संतुष्ट नहीं होना है। जब तक हम भागवत संकल्प की चरितार्थता एवं धार्मिक कर्मों में अंतर करना नहीं सीखेंगे, तब तक धार्मिकता से ऊपर उठकर, आध्यात्मिक चेतना में प्रवेश संभव नहीं बना पायेंगे ; जीवन में, कर्म तथा विचारों में भागवत संकल्प को चरितार्थ नहीं कर सकेंगे। संसार में विस्तृत विभिन्न जातियों तथा धर्मों को परम सत्य की एकाकी ध्वजा के नीचे एकत्र करने में, एकता का पाठ पढ़ाने में, आत्मिक स्तर पर उठाने में सफल नहीं होंगे ; हम उच्च चेतना से, मूल सत्य से दूर रहेंगे। जिसमें उठकर यह अनुभव स्वाभाविक होता है कि हम सब एक हैं। संपूर्ण सृष्टि परमेश्वर का एक कर्म है। उद्गम एक है। गन्तव्य एक है।

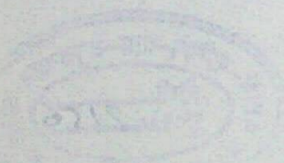
— सुखवीर आर्य


महर्षि–पाणिनि–प्रज्ञा–अनुसन्धान केन्द्र
तिथी
पु०सं० 2156
भारती पुस्तकालय



चिन्तन की नई दिशा





चिन्तन की नई दिशा



सुखवीर आर्य

श्रीअरविन्द चेतना धारा ट्रस्ट

पांडिचेरी

प्रथम संस्करण — २००२

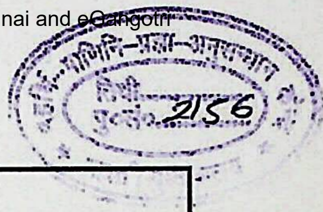
मुद्रक : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस
पांडिचेरी

मूल्य : ३० रुपये

प्रकाशक :
श्रीअरविन्द चेतना धारा ट्रस्ट
पांडिचेरी

"CHINTAN KI NAYI DISHA "
PUBLISHED BY :
SRI AUROBINDO CHETANA DHARA
PONDICHERRY

E-mail : sukhvirarya@sify.com
Phone: (0413) 2345277, 2220981



समर्पण

हे जगदीश्वर ! हे जग-जीवन धन ! अब तुम्हारे साथ संबंध स्थापित हो गया है। चित्त तुम्हारे चरणों में रहने लगा है। जीवन तुम्हारे इंगित पर चलता है। तुम सखा के रूप में साथ रहते हो। साक्षी की भांति नहीं, एक दिव्य व्यक्तित्व के रूप में तुम्हारी उपस्थिति अनुभव होती है। हर कर्म में, विचार में तुम्हारी चेतना प्रतिबिम्बित हो रही है। सब तुम्हारी प्रेरणा के अनुसार व्यवस्थित है। मैं जो हूँ, जैसा हूँ, जीवन जैसा भी है, सब तुम्हारा है। मेरी ओर से सब समर्पित है। तुम अपनी ओर से उसे चाहे जैसा स्वरूप प्रदान करो, मुझे स्वीकार होगा। मैं बिना किसी हिचकिचाहट के सब शिरोधार्य करता हूँ। आत्मा में स्थिति लाभ करने के पश्चात् यह रहस्य समझ में आया है कि मैं सदा तुम्हारा था और रहूँगा।

हे प्राणाधार ! ऐसी कृपा कर कि हर समाज का, हर संप्रदाय का, हर धर्म का प्रत्येक व्यक्ति आत्मा की विशाल चेतना में उठे। मानव जाति के प्रति, दूसरे धर्मों के अनुयायियों के प्रति उसका दृष्टिकोण आत्मा की विशालता पर, आत्मिक प्रेम पर आधारित हो।

अनुक्रम

———

भारत को जगतगुरु का स्थान पुनः प्राप्त करना होगा। मानवता के हृदय में वेदों के प्रति श्रद्धा का प्रदीप प्रज्ज्वलित करना होगा। मनुष्य जाति के सम्मुख वैदिक संस्कृति की उच्चता एवं महानता का आदर्श रखना होगा। अतिमानस के अवतरण का सुखद संदेश संसार को सुनाना होगा। जिसके फलस्वरूप मनुष्य आंतरिक स्तर पर जागेगा। सृष्टि के पीछे जो भागवत संकल्प कार्यरत है उसके प्रति सचेतन होगा। उसकी चरितार्थता को जीवन का स्वरूप प्रदान करेगा।

प्राक्कथन

सनातन काल-चक्र के जिस मोड़ पर संसार आज खड़ा है; यह युगान्तर की घड़ी है। जागरण की वेला है। श्रीअरविन्द ने इसे देव-मुहूर्त्त कहा है। यह उस महान कर्म की तैयारी का क्षण है जिसमें मनुष्य के अंदर बैठे परमेश्वर, उसके जीवन-रथ के दिव्य सारथि, उसे आत्मा में जगाना, आंतरिक स्तरों पर सचेतन बनाना चाहते हैं। उसकी चेतना को उस स्तर पर उठाना, जीवन को वह स्वरूप प्रदान करना चाहते हैं जहाँ अहंकार एवं इंद्रियों की दासता से ऊपर उठ कर आत्म-सत्य के द्वारा प्रेरित-चालित होना, इच्छाओं की पूर्ति के स्थान पर आंतरिक सत्य को चरितार्थ करना उसके लिए स्वाभाविक हो। इस अपूर्व वेला में कुछ भी प्रत्याशित अथवा अप्रत्याशित घटित हो सकता है। हमारी आत्मा के द्वारा संजोये युगों पुराने सुनहरे सपने साकार हो सकते हैं। भले ही एक ओर यह घड़ी सुखद प्रतीत न होकर संघर्षमय होती है – जिसमें अब तक की चली आ रही वस्तुओं का, प्रथाओं का, मान्यताओं का स्थान नई वस्तुएँ ग्रहण करती हैं, मूल्य उठते-गिरते हैं, सीमाएँ कचोटती हैं, संकीर्णताओं में घुटन अनुभव होती है। समाजों के स्तरों में, सभ्यताओं के स्वरूपों में, आचारों के मानदंडों में उत्थान-पतन देखे जाते हैं। धर्मों में, दर्शनों में, मर्यादाओं में परिवर्तन, संस्कार

झड़ते पाये जाते हैं – फिर भी, दूसरी ओर, जिस घड़ी में नया सुनहला सूर्य उदित होता है, धरती स्वर्ण आभा से मंडित नई किरण का स्वर्गिक स्पर्श अपने चिर-तृषित वक्षस्थल पर पाती है – वह भी यही होती है। आनंददायक विषय तो यह है कि बाहर से अव्यवस्थित-सी, असामंजस्यपूर्ण दिखायी देनेवाली इस वेला के धूमिल-से आँचल में सत्य-चेतना की दिव्य चिनगारी, काष्ठ में वह्नि की भांति छिपी है। जिन्हें दृष्टि है वे घटनाओं के बाह्य स्वरूप के पीछे देख रहे हैं कि एक जाज्वल्यमान दिव्य सूर्य के समान चेतना पृथ्वी पर अवतरित हो रही है। जिसका स्वर्णिम प्रवाह उसके आँगन में सतत प्रवाहित है और तब तक होता रहेगा जब तक संसार में स्थित प्राणियों एवं पदार्थों का अंतर्निहित सत्य उनके स्वभाव की वस्तु नहीं बन जाता, जीवन उसकी चरितार्थता का रूप ग्रहण नहीं कर लेता, उसकी दिव्यता में यहाँ सब रूपांतरित नहीं हो जाता।

एक नई क्रांति में संसार पदार्पण कर रहा है जो हर नये युग के आगमन के साथ जन्म ग्रहण करती है। इस युग में वह हमारे सम्मुख आध्यात्मिक क्रांति के रूप में आविर्भूत हुई है। इस संघर्षमय वेला में, परीक्षा की इस घड़ी में हर व्यक्ति को सत्य और असत्य में से किसी एक का चुनाव करना अनिवार्य होगा और इसी चुनाव पर उसके जीवन का मूल्य निर्भर करेगा। हमें चाहिये कि स्वयं सत्यासत्य के मिश्रण से बाहर आयें,

कर्तव्य-पथ पर आरूढ़ हों तथा दूसरों को भी इसी ओर प्ररित करें। कारण, विचारों में अथवा कर्मों के पीछे मिश्रित भावों के रहते अर्थात् निम्न प्रकृति की वृत्तियों का, अहंकार की मांगों का जब तक हमारे संकल्प में मिश्रण है – हम अतिमानसिक चेतना को ग्रहण करने में सफल नहीं हो सकते। जिसका अवतरण ही मिथ्यात्व की शक्तियों के स्थान पर यहाँ उच्चतम सत्य की शक्तियों को प्रस्थापित करने के लिए हुआ है।

यह समय नये अभियानों का है। अगर हम सामूहिक रूप में प्रयास करें, आज पृथ्वी को स्वर्ग के समान समृद्ध बना सकते हैं। उसका प्रारंभ हमें स्वदेश से करना होगा। हमारा प्रथम कर्तव्य होना चाहिये स्वदेश माता के चरणों में छोटे-बड़े, साधारण-असाधारण सब को एकत्र करें, इस शास्त्र-वाचा की ओर सबका ध्यान आकर्षित करें – एक व्यक्ति के सुखी होने से देश सुखी नहीं होता। एक देश के समृद्ध होने से संसार अभाव रहित नहीं होता। अगर मैं अपनी समस्या का हल खोज चुका हूँ तो इससे मानवता को क्या लाभ हुआ ! किसी एक व्यक्ति की मुक्ति से मानवता लाभान्वित नहीं होती। संपूर्ण मानव जाति की समस्या हमारी अपनी होनी चाहिये। हमारे वर्तमान कष्टों का कारण बाहर से चाहे जो भी हो – वास्तविक कारण आत्म-अज्ञान है। हम अपने आपको दूसरों से पृथक देखते, पृथक मानते हैं। यह भ्रांति है, अज्ञान है। जिससे बाहर

आने के लिए प्रचलित पद्धतियाँ, पंथ, मत तथा धार्मिकता अपर्याप्त हैं। कुछ आचार्यों की शिक्षा, जो जीवन तथा कर्मों के त्याग पर बल देते हैं, संन्यास का पाठ पढ़ाते हैं, हमारी दृष्टि में अपूर्ण है, हमें अस्वीकार्य है। कारण, हमने जो लक्ष्य अपने सम्मुख निर्धारित किया है, जीवन को जो स्वरूप प्रदान करने जा रहे हैं – जहाँ मानव-जीवन-स्तर में उत्थान, उसका आत्मा की दिव्यता में रूपांतर प्रथम अभिव्यक्ति होगा – उसके अनुरूप नहीं है। हम जीवन के प्रति उपेक्षा का भाव ग्रहण कर उसमें उत्थान नहीं ला सकते। कर्मों से उपराम होकर उन्नति नहीं कर सकते। संसार के त्याग की भावना हृदय में संजोकर उसका उपकार नहीं कर सकते। "माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्या" के भाव से हम दूर चले जाते हैं। मानवता के प्रति शास्त्रोक्त कर्तव्य से विमुख हो जाते हैं। कारण, संसार के त्याग की भावना हृदय में उठते ही हम अपनी आत्मा के प्रभाव से, सृष्टिकर्ता परमेश्वर की सहायता से, उनकी वात्सल्यमयी गोद से बाहर आ जाते हैं। हर उपलब्धि के लिए उन पर निर्भरता हमें एक अज्ञानजनित क्रिया प्रतीत होती है – जब कि वास्तव में शास्त्रों के अनुसार प्रभु पर पूर्ण निर्भरता पदार्थों का अंतर्निहित सत्य है, स्वभाव है और होना ही चाहिये क्योंकि यहाँ सब उसी एकमेवाद्वितीयम् मूल अस्तित्व की अभिव्यक्ति है और हर पदार्थ का सब कुछ

के लिए उसी की ओर लौटना, उसी की शरण ग्रहण करना स्वाभाविक गति है।

हमें इस शास्त्र-वाचा पर ध्यान देना सीखना है कि पथ का चुनाव अपनी इच्छानुसार करते ही समर्पण का भाव पीछे छूट जाता है। आंतरिक पथ-प्रदर्शन का द्वार बंद हो जाता है। अपनी बुद्धि के अनुसार जीवन को मोड़ प्रदान करते ही – जहाँ हमारे भावों के पीछे प्रायः ही महत्वाकांक्षा होती है – हमारा निवास सीमित अहंमयी व्यक्ति-चेतना में होता है जो कि आत्म-अज्ञान का क्षेत्र है। हमें अपने भाव में समर्पित रहना होगा। आत्म-प्रेरित जीवन यापित करना होगा। उच्च चेतनाओं की ओर उद्घाटित रहना सीखना होगा। अहंकार सहित सारी सत्ता को समर्पित जीवन जीने की शिक्षा प्रदान करनी होगी। अंतस्थ देव के इंगित पर चलने का, हर पग आत्मा में सचेतन होकर उठाने का अभ्यासी बनना होगा। तभी जीवन-स्तर में उत्थान, वह महान रूपांतर संभव होगा जिसके द्वारा मानव-जाति अतिमानव जाति में विकसित हो सकेगी – जो कि सृष्टि-विकास-क्रम में अगला अवश्यंभावी प्रकरण है।

* * *

— २ —

संसार का वातावरण सुखी, सामंजस्यपूर्ण एवं दिव्य शांति से ओत-प्रोत बनाने के लिए, देशों, धर्मों तथा जातियों को एकता के सूत्र में बांधने के लिए हमें नई चेतना की ओर, अतिमानसिक चेतना की ओर, जो कि संसार में अवतरित हुई है, उद्‌घाटित होना होगा। अतिमानसिक चेतना की विशालता इतनी आकर्षक है कि मानव-जाति स्वतः उसकी ओर आकृष्ट होगी। मानों, उसके अंदर कोई युगों से इसका प्यासा था और आज उसका अवतरण पृथ्वी पर देख कर वह आंतरिक संतुष्टि अनुभव कर रहा है। मानों, वह आश्वस्त है कि संसार का जीवन परिवर्तित होगा। उसमें आत्मा की चेतना, उसकी दिव्यता प्रवाहित होगी जो कि श्रीअरविन्द के अनुसार उसका अवश्यंभावी परिणाम होगा।

संसार में सामंजस्यपूर्ण जीवन एक कल्पना नहीं है। यह संभव है। मानव जाति की भावी नियति है। यह पहले भी हुआ है और पुनः होने जा रहा है। यह अवश्य होगा। पदार्थों के अंतर्निहित सत्य का जब हम अवलोकन करते हैं, हमें इसकी संभावना स्पष्ट गोचर होती है।

हमारा कर्म-क्षेत्र पृथ्वी है। हमें यहीं सब प्राप्त करना है। आत्मा की मुक्त चेतना में निवास यहीं रहते संभव बनाना है।

हमें बार-बार तब तक यहीं आते रहना है जब तक प्रकृति की दासता से, अहंकार रूपी मिथ्या व्यक्तित्व से मानव जाति ऊपर नहीं उठ जाती, सीमित व्यक्ति-चेतना को अतिक्रम कर वसुधैव कुटुम्बकम् रूपी वैदिक उद्घोष संसिद्ध नहीं कर लेती। तब तक संपूर्ण मानव-जाति के लिए आत्मा के एकत्व में प्रवेश का द्वार खोलना, उसके संघर्षमय जीवन में अमृत-सिन्धु को प्रवाहित करना संसार में हमारे आगमन का उद्देश्य रहेगा। हमारे पुरुषार्थ की दिशा, हमारा लक्ष्य एक होना चाहिये। हमें मानवता को अपने प्रेमालिंगन में बांधना है। अपने हृदय से उन सब बीजों को, उनके होने के आन्तरिक तथा बाह्य कारणों को समूल नष्ट करना है जो समाज में विभाजन करने के लिए बाध्य करते हैं – जैसा कि देखने को मिला है और जिसका भयंकर परिणाम हम आज भोग रहे हैं और निस्संदेह तब तक भोगते रहेंगे जब तक यह विभाजन रहेगा, इसका अंत नहीं आयेगा। हमें चाहिये कि उनके स्थान पर नये बीज, दिव्य जीवन के बीज बोयें, तभी संसार शोक-संताप से, दुख-कष्ट से मुक्त होगा। अहंकार की काली छाया के द्वारा मानव-चेतना अधिकृत नहीं होगी। हम सारी मानवता को एक परिवार देखेंगे जहाँ एकता रूपी मधु वर्षण होता है, मानव, मानव का प्रिय करने में हर्ष अनुभव करता है, सब सत्य तथा धर्म के द्वारा शासित रहता है।

धर्मों का जो वर्तमान स्वरूप आज हमारे सामने है, कुछ सारहीन बाह्य रूढ़िगत प्रथायें, रीति-रिवाज ही जहाँ धर्म कहलाती हैं, जो कुछ मनीषियों की शिक्षा पर, उनकी अनुभूति पर निर्भर करता है, जैसा कि हम अपनी-अपनी धर्म-पुस्तकों में पाते हैं, उसे पूरी श्रद्धा के साथ ग्रहण करते हैं – यहाँ तक कि किसी तर्क की कसौटी पर अथवा अपनी आत्म-अनुभूति के द्वारा भी परखने की अनिवार्यता अनुभव नहीं करते – यह भी जानने का कष्ट करना नहीं चाहते कि हमारा धर्म आत्म-सत्य के कितना समीप अथवा दूर है, वह हमारे हृदय का पर्दा हटाने में, अन्तर् आवरणहीन करने में कहाँ तक सहायक है। जिन धर्मों में मनुष्य, मनुष्य के रक्त का प्यासा केवल इसलिए है कि वह उसके धर्म का अवलम्बी नहीं, उसकी जाति का नहीं और केसे भी दूसरे धर्मों को नष्ट कर पथ्वी पर केवल अपना धर्म फैलाना चाहता है – ऐसी स्थिति में हमारे लिए उचित होगा कि हम ऐसे मानवकृत धर्मों को पीछे छोड़ कर, मानवता रूपी महा धर्म में प्रवेश करें। इस आदर्श सिद्धान्त में उन सभी विजातीय तत्वों का प्रवेश निषेध करें जो इसमें प्रवाहित सत्य के मार्ग को अवरुद्ध करते हैं। उसके अवतरण में बाधक बनते हैं। हमें धरती के हर कोने को प्रकाशित करना है। प्रत्येक व्यक्ति के अंदर आत्म-सत्य में उठने की, उसके प्रति उद्घाटित होने की जो संभावना आज सुप्त है, उसे जगाना है। उसे नई चेतना की

ओर, नई आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करना है। जहाँ हम धर्म के बाह्य स्वरूप में संलग्न न रह कर उसके मूल को, उसकी आत्मा को अपने जीवन में तथा कर्मों में चरितार्थ करते हैं। हमें सामूहिक रूप में उस विशालता में उठना होगा जहाँ मानव मात्र को अपना सखा समझें और अनुभव करें कि हमारी आत्मा दूसरों को सुखी देखकर सुखी होती है। जीवन वही है जो दूसरों के लिए, संसार के कल्याण के लिए यापित किया जाता है। मनुष्य वही है जो सर्वत्र एक आत्मा को देखता है, एक जीवन अनुभव करता है, मानव मात्र को अपना आत्मीय मानता है। किसी मध्यस्थ सत्ता, शक्ति अथवा पैगम्बर को नहीं, वरन् उस परमेश्वर को समर्पित है जिसका यह सब विस्तार है, जिसने ये सब रूप ग्रहण किये हैं, इनके अंदर विराजमान है। शास्त्रों के अनुसार जो व्यक्ति संसार में निवास करते हुए परम सत्य के द्वारा प्रेरित-चालित है, जो सत्य एक है, सृष्टि को अपने अंदर धारण किये हुए है। इसे इसके मूल की ओर ले जा रहा है जो कि अमृत का, आनंद का अनंत सिन्धु है।

* * *

— ३ —

अपनी सत्ता के सत्य को पाने की अभीप्सा जिनके अंदर है, जीवन का वर्तमान अज्ञानमय स्तर जिन्हें असह्य है, जो उसका अतिक्रमण करना चाहते हैं, सीमित अहंमयी चेतना की परिधि में निवास से ऊब गये हैं, बाह्य सतही स्तर के स्थान पर आंतरिक सत्ता में निवास, उसके द्वारा प्रेरित होना चाहते हैं, आध्यात्मिक जीवन यापित करना, मानसिक चेतना का अतिक्रमण कर अतिमानसिक चेतना में उत्थान संभव बनाना, उसके द्वारा जीवन को, कर्मों को दिव्य स्वरूप प्रदान करना चाहते हैं — वे इन पुस्तकों की गहराई का स्पर्श करेंगे। इनके अध्ययन से अवश्य लाभान्वित होंगे। आत्मोन्नति का नया पथ उनके सम्मुख प्रशस्त होगा। चेतना-स्तर ज्योतिर्मय होगा। ऊर्ध्व चेतनाओं में आरोहण करने का संकल्प उनमें जागेगा। एक उच्च आध्यात्मिक स्तर की खोज लक्ष्य रूप में चुनेंगे। उसी की चरितार्थता उनके जीवन का स्वरूप होगा।

मैंने एक विशाल चेतना में निवास संभव बनाया है। व्यक्ति-चेतना की परिधि का अतिक्रम कर अंतर्सत्ता जब सम्मुख आती है, यही वह स्थिति है जिसमें प्रेरणाओं के द्वारा मैं अधिकृत होता हूँ। जो सृष्टिकर्ता परमात्मा के संकल्प की सीधी चरितार्थता के सिवाय अन्य किसी पदार्थ को, उपलब्धि को

महत्व प्रदान नहीं करती। एक दिव्य उपस्थिति को मैं अपने समीप पाता हूँ। वह मेरे भीतर भी है। उसका पथ-प्रदर्शन मुझे सुलभ है। वह वात्सल्यमयी है। करुणा की मूर्ति है। वही साधन-पथ पर मेरे पग संवारती है। जीवन में मैंने जो भी प्राप्त किया है – यदि अंधकारपूर्ण हृदय-गुफा में प्रकाश उतरा है, चेतना में विशालता आयी है, मन तथा इंद्रियों की गति अंतर्मुखी हुई है, सारी सत्ता प्रभु को समर्पित रहने में आंतरिक प्रसन्नता अनुभव करने लगी है – तो यह मेरे अंदर उसी की क्रिया का फल है। उसने ही मुझे सत्य की ओर उद्घाटित किया है। मुक्त चेतना का, एक ज्योतिर्मयी दिव्य चेतना का द्वार मेरे सम्मुख खोला है। वही सब व्यवस्थित कर रही है। हर घटना के पीछे वही है। उसे ही मैं हर शब्द समर्पित करता हूँ। उससे ही हर शब्द ग्रहण करने का प्रयास करता हूँ। वह चेतना इन पुस्तकों में अनुभव की जा सकती है। वह आत्मा के माधुर्य से भरपूर है। मानव-हृदय उसके रसपान में विभोर हो जाता है। हम कहेंगे यह चेतनाओं के मेघों से टपकती बूंदों का एकत्र किया हुआ निर्मल जल है। उस सब मैल को धो डालने में समर्थ है जो मानव आत्मा पर जीवन के धूमिल मार्गों में जमना स्वाभाविक है। अनुभव कहता है – यहाँ तक कि हम अपने अनुभव पर शास्त्रों की मुहर भी देख रहे हैं – जब तक मानव अपना मार्ग परिवर्तित नहीं करेंगे, सूर्यालोकित पथ पर आरूढ़

नहीं होंगे, तब तक उनके हृदय की मलिनता बढ़ती रहेगी। आन्तरिक ज्योति उनके मन-बुद्धि पर नहीं पड़ेगी। पर्दा अधिकाधिक घना होता जायेगा। उनका जीवन अंधकारमय रहेगा। भटकना उनकी नियति होगी।

इन पुस्तकों की हर पंक्ति प्रेरणाओं की अभिव्यक्ति है और जो उद्घाटित हैं उन्हें प्रेरित करने में समर्थ है। मैंने लिया नहीं, मुझे यह कर्म दिया गया है। १९९५ से श्रीमाताजी इस या उस रूप में मुझे अपनी इस योजना के विषय में कुछ इंगित प्रदान करती रही। उस समय मैं इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था। जैसे आज भी, कभी-कभी जब उनके शब्द अलौकिक होते हैं – रूपक या सांकेतिक भाषा में होते हैं – उसके विषय में कल्पना करना मेरे लिए असंभव है। कारण, मैं अपनी क्षमता को, उसकी सीमा को भली भांति जानता हूँ। किन्तु सुना है, शास्त्र गाते हैं, प्रभु का दिव्य हस्त, उनका अलौकिक स्पर्श जहाँ है, जहाँ उनकी कृपा बरसती है, असंभव संभव हो जाता है।

सुखवीर आर्य

२.१०. २००२ श्रीअरविन्द आश्रम, पांडिचेरी

आह्वान

इस सुहावनी संध्या में मैंने तुझे पुकारा, मानव मात्र के लिए प्रार्थना की। हे देवाधिदेव ! हे दयानिधे ! ऐसी कृपा कर कि मनुष्य अपने स्वभाव जनित दोषों के प्रति सचेतन हों। वे समझें कि अपने सत्य स्वरूप से दूर क्यों हैं ! अज्ञान में निवास को स्वाभाविक मान कर क्यों चल रहे हैं ! वे भीतर सचेतन क्यों नहीं ! अंतस्थ सत्ता के साथ संबंध स्थापित करने में सफल क्यों नहीं होते ! क्यों अपने आपको मन से, शरीर से, इंद्रियों से पृथक् नहीं देख पाते ! क्यों इनकी इच्छाओं को अपनी समझते हैं, मांगों को अपनी मानते हैं और उनकी पूर्ति में जीवन का बहुमूल्य समय नष्ट करते हैं। तू कृपा कर ! वरदानों का द्वार खोल दे। मनुष्य जागें। तेरे अस्तित्व के विषय में सचेतन बनें। तेरी उपस्थिति अपने भीतर, चारों ओर अनुभव करें। वे देखें कि यहाँ सिवाय तेरे ऐसा कोई पदार्थ नहीं, तत्व नहीं, शक्ति नहीं जिसका स्वतंत्र रूप से अस्तित्व हो। जो तेरे समान महत्वपूर्ण हो। उनके अंदर यह भाव दृढ़ हो कि जीवन वही जिसमें तेरी चेतना, तेरा संकल्प प्रवाहित हो। जिसकी हर क्रिया में तेरा विधान सर्वोपरि हो। तेरा आनंद, तेरी मुस्कान का माधुर्य झरता हो। हर क्रिया में तेरा दिव्य स्पर्श झलकता हो।

प्रार्थना का स्वरूप

हे प्रभो ! ऐसी कृपा कर कि मनुष्य समझ सकें उन्हें कोई सब समय देख रहा है। उनके कर्मों में शुभाशुभ का निरीक्षण किया जा रहा है। वे जो योजनायें बना रहे हैं उनको, उनके मर्म को – यहाँ तक कि जिसे वे संसार से छिपाना चाहते हैं, छिपाने का हर संभव प्रयास करते हैं – कोई भली प्रकार परख रहा है। संसार के पीछे, इन प्राणियों तथा पदार्थों के भीतर सहायक के रूप में एक अतिचेतन सर्वशक्तिमान दिव्य पुरुष विद्यमान है, जो इन्हें गन्तव्य की ओर प्रेरित कर रहा है। इनके अंदर आत्मा की परिपूर्णता में उठने की अभीप्सा जगा रहा है। वह प्राणिमात्र का प्यारा है, उनका मंगल चाहता है। शिशुओं के समान पालन करता है। ये उसके अपने हैं और आत्मवत प्रेम करता है। आत्मोन्नति के मार्ग में इनकी सहायता करता है। अज्ञान की शक्तियों के द्वारा बाधा उपस्थित करने पर रक्षा करता है। ये उन्नत हों, सब प्रकार सुखी हों, इनके जीवन में आंतरिक सत्य, आत्मिक चेतना प्रवाहित हो – यह उसके हृदय की दिव्य अभिलाषा है।

हे जगत पिता ! हमें ऐसी योग्यता प्रदान कर कि हम अपने समाज का ही नहीं, संसार में प्रचलित सभी समाजों का, संप्रदायों का स्तर ऊँचा उठा सकें। उनकी चेतना में परिवर्तन

संभव बना सकें। परम सत्य की ओर, आत्मा की दिव्यता की ओर, उसकी विशालता की ओर उसमें उद्घाटन संभव बना सकें। सर्वत्र सामाजिक चेतना परिशुद्ध हो। उसमें अहंकार के भावों का जो मिश्रण है, उसका हम परिवर्जन कर सकें। जीवन के स्वरूप में, सांप्रदायिकता पर आधारित उसकी धार्मिकता में, जातीयता की भावनाओं में, प्रथाओं में, रीति-रिवाजों में परिवर्तन ला सकें। हम उन्हें सिखा सकें कि शरीर को कष्ट देने से आत्मा शुद्ध नहीं होती। जंगलों में, गुफाओं में, एकान्त स्थानों में बैठना, मन तथा इंद्रियों को नियंत्रित करने का, चित्त की वृत्तियों के निरोध का एक मात्र संभव उपाय नहीं है। केवल पांच बार उस पिता को याद करने से नहीं, सतत स्मरण से, सप्ताह में एक बार पवित्र गिरजाघर में हाजिरी देने से नहीं, आत्मा के पथ-प्रदर्शन में चलने से हृदय का पर्दा हटता है। वे समझें इस सृष्टि का मूल, दिव्य प्राप्तव्य, एक अतिसूक्ष्म तत्व है और वह स्थूल उपकरणों से, बाह्य कर्मकांडों से प्राप्त नहीं होता। यज्ञ-हवन से, अनुष्ठानों से, उपवासों से नहीं, मूर्ति के चरणों में बैठने से, उसकी पूजा, उसकी आरती करने से नहीं, वरन्, योगयुक्त होकर जीवन यापित करने से, अहंकार के स्थान पर आत्मा से प्रेरित होकर जीवन-मार्गों पर अग्रसर होने से, संपूर्ण जीवन को साधना का रूप प्रदान करने से प्राप्त होता है। जिसमें हर क्रिया, छोटी से छोटी गति भी – चाहे वह शारीरिक

हो या मानसिक – अंतस्थ देव को समर्पित होती है, एक शब्द में – जब संपूर्ण सत्ता प्रदीप की लौ का रूप ग्रहण करती है, जीवन का, विचार, भाव, कर्मों का स्वरूप उच्च, उनकी गति ऊर्ध्वमुखी होती है, तब वह महान कर्म संसिद्ध किया जाता है। मूल के साथ हमारा तादात्म्य संभव होता है। हम सीमित व्यक्ति-चेतना का अतिक्रमण कर उस अनन्त सत्ता में आरोहण संभव बनाते हैं जिसका यहाँ या वहाँ सब विस्तार है। जिसमें उठ कर संसार मिथ्या, माया प्रतीत नहीं होता। संपूर्ण सृष्टि परमेश्वर की आत्म-अभिव्यक्ति गोचर होती है।

हे परमेश्वर ! हमारे हृदय में यह भाव कूट-कूट कर भर दे कि हर प्राणी में तू समान रूप से विराजमान है। सब तुझे समान प्रिय हैं। सब का कल्याण चाहता है। और हमारा भी यही कर्तव्य हो कि हम सबको आत्मवत प्रेम करें उनके हित में अपना सर्वस्व बलिदान करने को सदा उद्यत रहें। शास्त्रों का यह सारगर्भित वचन हम हृदयंगम करें कि जीवन वही है जिसमें आत्मा का सत्य चरितार्थ हो। कर्म वही है जो भागवत संकल्प को अभिव्यक्त करे। मनुष्य वही है जो मानवता के हित में अपने सब सुखों को भेंट चढ़ा दे। यहाँ तक कि अपनी व्यक्तिगत उन्नति की कामना को भी उत्सर्ग कर दे।

हे करुणानिधान ! ऐसा कर कि तेरे द्वारा प्रेरित ये शब्द उन आत्माओं तक पहुँचें जिन्हें इनकी आवश्यकता है। मानव,

मनन की इस नई दिशा की ओर अभिमुख हों। वे समझें कि प्रत्येक अंग सुखी होने से ही हम सुखी होते हैं। किसी एक अंग में व्यथा रहने से सुखी अनुभव नहीं कर सकते। सारी सृष्टि परमात्मा का एक कर्म है। संसार के सब प्राणियों एवं पदार्थों में जीवन और चेतना के रूप में एक ही दिव्य पुरुष विद्यमान है। सब उसके अंग-प्रत्यंग हैं। सब के सब प्रकार सुखी होने पर ही वह सुखी अनुभव करेगा। भले ही अपनी असीम आत्म-सत्ता में वह आनंदमय है। उसका आनंद किसी बाह्य वस्तु पर निर्भर नहीं करता। फिर भी अपनी आत्म-अभिव्यक्ति रूप इस सृष्टि में पूर्णता लख कर, इसे दिव्यता से ओत-प्रोत, दुखों से ऊपर, आत्मा की मुक्त चेतना में स्थित देख कर वह आनंदित होता है। काव्यमयी भाषा का सहारा लेकर हम कहेंगे कि उसके आनन्द में वृद्धि होती है।

श्रीमाताजी का यह दिव्य भाव, भव्य विचार, प्रेरणात्मक सूत्र हम यहाँ अपने शब्दों में व्याख्यायित कर रहे हैं। वे कहती हैं – सभी दिव्य उपलब्धियाँ प्रभु से आती हैं। उनकी देन होती हैं। हमें चाहिये उनका अपने सीमित व्यक्तित्व के लिए उपभोग न करें। व्यक्ति सत्ता की संतुष्टि की ओर ध्यान न देकर प्रभु-आदेश-पालन को जीवन में सर्वोच्च स्थान प्रदान करें।

आविर्भाव

वह एक सुखद, सुहावनी, दिव्यता से ओत-प्रोत घड़ी थी। देव-मुहूर्त था। जब वसुंधरा ने युगों से की हुई अपनी तपस्या का स्वर्णिम फल पाया। उसके हृदय की चिर पोषित अभिलाषा पूर्ण हुई, आंगन में कृपा बरसी। हिमगिरि के समान विशाल, सिंधु की भांति विस्तृत एक प्रकाश-स्तंभ उषा के साथ संसार के ऊपर प्रकट हुआ। मानों, सर्वोच्च आलोक को धारण करनेवाला अतिमानसिक सूर्य आज अपनी तम-विनाशिनी रश्मियों के द्वारा अनंत नभ में निराधार घूमती हुई धरा को अपने आभामय आलिंगन में भरने के लिए आतुर हो उठा हो। धीरे-धीरे उसमें एक ज्योतिर्मय पुरुष की आकृति भासित हुई। वह उसकी आत्मा थी और प्रकाश उसका बाह्य स्वरूप। सब जीवन्त था। नई चेतना के स्पंदनों से स्पंदित था। जैसे ही मनुष्य जागे उनके दृग उस अपूर्व अद्भुत क्षितिज की ओर गये। वे अवाक् थे। एक ज्योतिर्मय पुरुष को पृथ्वी पर अवतरित होते देखा गया। वह धीरे-धीरे पग उठा रहा है। शायद वह अपने आगमन के विषय में उसकी पूर्व-सूचना संसार को देने का इच्छुक नहीं है। उसकी दृष्टि सीधी सिर के ऊपर है। दूर गगन को भेद रही है। वह न सामने देखता है न नीचे। जैसे-जैसे वह पृथ्वी के वातावरण में प्रवेश करता है, प्रतीत होता था सोपान

की पौड़ियाँ कम होने की अपेक्षा बढ़ती जा रही हैं। इससे पृथ्वी की आत्मा को उसके चरण-स्पर्श का अलौकिक सुख प्राप्त करने में विलंब हो रहा है। वह आतुर है। विह्वलता के साथ प्रतीक्षारत है। यह दृश्य देख कर मेरी आत्मा क्रन्दन कर उठी। उसके हाथ उठे थे, दृष्टि ऊपर की ओर थी। मानों, वह मनुष्यों के साथ देवताओं को भी संबोधित कर रही हो, अपनी पुकार को धरा एवं स्वर्ग दोनों के पार पहुँचाने का प्रयास कर रही हो। उसके हृदय से ये उद्‌गार फूट पड़े। हे मानव ! जाग ! उत्तिष्ठ। सचेतन बन। जरा सोच ! इस स्थिति में तेरा क्या कर्तव्य है ! तेरे सहयोग का स्वरूप क्या होगा ! तुझे सहयोग प्रदान करना ही होगा। वसुन्धरा के हृदय की व्यथा दूर करने का, उसकी चिर प्यास बुझाने का संकल्प लेना ही होगा। युग बीत गये, तू अपने कर्तव्य के विषय में सचेतन नहीं हुआ। यही कारण है कि तेरे कष्टों का निवारण न हो सका। वे अंत न पाये। क्या आज भी तू नहीं जागेगा ! कर्तव्य-पालन हित संकल्प नहीं लेगा ! शताब्दियाँ बीत रहीं हैं। युग पर युग चले जा रहे हैं। तेरी अवस्था वही है। वसुधा के वातावरण में अज्ञान एवं अंधकार विद्यमान हैं। मानव-चेतना सीमाओं में बंद है। व्यक्ति अपने आपको समष्टि से पृथक् अनुभव करते हैं। अपने लिए जीते हैं। इसीलिए संसार में स्वार्थ-भाव, हिंसा-द्वेष अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं। अन्यथा, उनके होने का कोई तात्विक कारण नहीं है।

परमेश्वर की सुभग सृष्टि में, उनके इस भव-उपवन में ये काँटे हैं। कटु एवं विषैले फल हैं। जो नहीं होने चाहियें और एक दिन नहीं रहेंगे। भूतल का कलुष धुलेगा। अज्ञान-अंधकार से मुक्त होगा। पैशाचिक वृत्तियाँ विलीन हो जायेंगी। यहाँ सब अतिमानसिक द्युति से द्योतित होगा। मानव आत्म-एकत्व में जागेंगे। आत्म-चेतना में उठेंगे। सब सत्य से ओत-प्रोत होगा। सत्यं-शिवं-सुन्दरम् की अभिव्यक्ति होगा। स्वर्णिम मेघ गरजेंगे। हिरण्य मयूर नाचेंगे। मानव सत्य-युग का श्रीगणेश देखेगा। उसके लिए मानसिक चेतना का अतिक्रमण कर अतिमानसिक चेतना में प्रवेश संभव होगा। धरती पर मनुष्यों के बीच में, उनके साथ अतिमानव विचरण करते देखे जायेंगे। वह एक अद्भुत वर्णनातीत दृश्य होगा। वसुधा का वातावरण आनंद से परिप्लावित हो उठेगा। मानव-हृदय प्रभु का शांत, शुचि मंदिर होगा। हम एक-दूसरे को देख कर आत्मीयता अनुभव करेंगे। मिल कर चलेंगे। पृथ्वी का जीवन स्थायी रूप से सुखी बनाने के लिए, स्वर्ग-संपदाएँ बटोर लाने के लिए मिल कर अभियान की तैयारी करेंगे।

जो संयमी नहीं, वह हृदय का पर्दा नहीं हटा सकता। जो समर्पण का पथ नहीं अपनाता उसे सर्वोच्च चेतना प्राप्त नहीं होती।

हृदय मंदिर

हृदय को मंदिर का रूप प्रदान करें। वह स्वच्छ हो, निर्मल हो। उसका वातावरण दिव्य हो। भक्ति-भाव से भरा हो। भागवत उपस्थिति जीवन्त अनुभव हो। द्वार उद्घाटित रहे। हमारे जीवन में, कर्मों में विचार तथा भावों में भीतर की अंतस्थ ज्योति एवं चेतना प्रवाहित हो।

छल-कपट, चालाकी, धूर्त्तता उस हृदय में निवास करते हैं जो तमसाच्छन्न है। आसुरिक शक्तियाँ अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए इनका प्रयोग करती हैं। जो मनुष्य आत्म-कल्याण का अभिलाषी है उसे इन चीजों से दूर रहना चाहिये। इनके रहते मानव हृदय कभी आवरणहीन नहीं हो सकता। सात्विक वस्तुओं की ओर, दिव्य भावों की ओर उद्घाटित रहना, उन्हें अपने कर्मों में चरितार्थ करना मनुष्यत्व है। मनुष्य के अंदर, उसके सच्चे व्यक्तित्व के रूप में एक दिव्य पुरुष विराजमान है। वह स्वभाव से सत्य का, धर्म का, सौंदर्य का पुजारी है। उसका हृदय मंगल-कामनाओं से भरपूर है। उसमें से निरंतर प्रेम के प्रकंपन विकीर्ण होते रहते हैं। वह प्राणी मात्र को प्रेम करता है। वह जानता है कि सृष्टि परमेश्वर की रचना है। उनकी आत्म-अभिव्यक्ति है। इसीलिए उसे संसार में हर प्राणी, हर पदार्थ प्रिय है। वह सबको सुखी एवं उन्नत देखना चाहता है।

इस लक्ष्य की पूर्ति में अगर उसका बलिदान आवश्यक हो वह सहर्ष स्वीकार करता है। हर व्यक्ति अपने हृदय की गहराई में इन गुणों से संपन्न है। प्रेम, दिव्यता, उदारता, बलिदान के भाव ही मनुष्य को उसकी सीमित व्यक्ति-चेतना से ऊपर उठाकर विश्व-चेतना में स्थित करते हैं। जो हमारे व्यक्तित्व का सच्चा स्तर है। हमें चाहिये कि हम अपने व्यवहार में इन गुणों को – जो कि आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं – चरितार्थ करें। विश्व-पुरुष की विशालता में अपना निवास संभव बनायें। उसी दृष्टि से सबको देखें। विश्व-भाव की अभिव्यक्ति निश्चय ही संसार में सुख शांति से भरपूर, सामंजस्य से पूर्ण जीवन संभव कर सकेगी।

———

हे भगवती माता ! हे परा चेतने ! अपनी प्रिय संतानों का उद्धार कर ! ये भटक रहे हैं। इनकी जीवन गाड़ी का पहिया जन्म-जन्मान्तरों से जिस लीक पर चलता आ रहा है आज भी उसी पर है। ये लीक बदलना नहीं चाहते। जब कि संसार में जीवन का लक्ष्य ही है प्रगति, विकास, उत्थान, परिवर्तन अर्थात्, यहाँ जो भी है उसे अपने मूल स्वरूप में परिवर्तित होना होगा। इस अदिव्य भासित होनेवाले जगत का मूल एक दिव्य सत्ता है। अतः यह प्रसंभाव्य है कि यहाँ सब – उत्तरोत्तर विकसित होते हुए – एक दिन अपनी मूल दिव्यता में रूपांतरित हो। जो मूल में है वह ऊपर आये, अपने यथार्थ स्वरूप में प्रकट हो।

दिव्य वाचा

जब तक हमारे अंदर चंचलता है, हम स्थिर नहीं, हृदय और मन में कामननाएँ हैं, इंद्रियों में विषयों की भूख है, शरीर सुख चाहता है, अहंकार महत्वाकांक्षाओं में डूबा संसार का सबसे धनी व्यक्ति होने के सपनों में खोया रहता है, तब तक हम कभी भी, किसी स्तर से भी, कितने भी महान आदर्शों की पूर्ति में व्यस्त क्यों न हों, निम्न प्रकृति के आवेगों के द्वारा वहाँ से खींच लिये जाते हैं। उनके सम्मुख हमारे बुद्धि-विवेक ठहर नहीं पाते। दूसरी ओर, जब तक संस्कारों की छाप गहरी है और हम उससे बाहर झांकने में, रूढ़िगत परंपराओं को तोड़ने में, उनका अतिक्रमण करने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं – तब तक किसी स्थायी सुख की, ज्योतिर्मय जीवन की, सत्य से ओत-प्रोत मानसिकता की, किसी ठोस आध्यात्मिक अनुभूति की आशा करना व्यर्थ है। हमें समझना है कि मरु में बीज नहीं उगता। तब तक शास्त्रों की इस दिव्य वाचा को हमें बार-बार स्मरण करते जाना है। आत्मा को शुद्ध कर। उसे प्रकृति से पृथक् कर। चेतना की गति ऊर्ध्वमुखी हो। मन, हृदय, इंद्रियों सहित सारी सत्ता प्रदीप की लौ की भांति स्थिर, एकाग्र रहे। तेरे अंदर प्रभु-प्राप्ति के सिवाय कोई इच्छा न उठे। सत्ता के रोम-रोम में नामोच्चारण, ओ३म् की मधुर ध्वनि का अनुपम

गुंजन श्रवण-पथ से आता हो। जीवन-आंगन पवित्रता के पुष्पों से, प्रभु-प्रेम की लताओं से भरा हो। भक्ति-रस से सिंचित हो। भीतर-बाहर वातावरण अलौकिक, आत्म-दिव्यता से भरपूर हो। उसमें आत्म-निवेदन के कोमल किसलय श्रद्धा-समीर के साथ हिलोरें ले रहे हों। सब मिलकर सुरपुरी के सौन्दर्य की शोभा की खान हो। उस जीवन-विज्ञान की दिव्य कला का तू ज्ञाता हो, जो तेरे वर्तमान जीवन को सर्वोच्च चेतना-सूर्य की स्वर्णिम रश्मियों से प्रकाशमान कर उसमें अमरता के बीजों का रोपण करने में समर्थ हो।

हे सृष्टि के मूल ! हे दिव्य उद्‌गम ! हे दयानिधे ! ऐसी कृपा कर कि मनुष्य पूर्ण एकाग्रता के साथ आत्म-अनुसंधान की ओर मुड़ें, अपनी आत्मा में झांकें। स्वभाव की दुर्बलताओं के विषय में सचेतन बनें। सब कुछ भूलकर, पूर्ण नीरव होकर भीतर डुबकी लगायें। मन की कामनाएं, हृदय के भाव, इंद्रियों के आवेग, शरीर की मांगें, अहंकार के दावे, चित्त की वृत्तियाँ, संस्कारों के समूह, सत्ता में पड़ी ग्रंथियां, इन सबकी पोटली बनाकर अंतस्थ देव की भेंट चढ़ा दें। उनके आदेश की चरितार्थता को जीवन का स्वरूप प्रदान करें। सब परिस्थितियों में समर्पण के भाव में दृढ़ रहें। समर्पण को पूर्ण से पूर्णतर बनाते जाना ही इनके पुरुषार्थ का स्वरूप हो।

अंतर दीप जलायें

जिनके पास प्रकाश नहीं उन्हें भटकना होता है। किन्तु जिस जाति के पास प्रकाश है, जो हर युग में संसार को प्रकाश एवं चेतना प्रदान करती रही, ज्योति-स्तंभ के रूप में मानवता का मार्ग जगमगाती रही, उसके लिए बाह्य तथा आंतरिक उन्नति का पथ प्रशस्त करती रही, वह क्यों भटक रही है ! कहाँ है इसका कारण !

कुछ भी हो, चाहे हम घर में धूप-दीप जलाएं चाहे मंदिरों में, चाहे अपने सत्संग भवनों को बड़े-बड़े लैम्पों से प्रकाशित करें, हमारे हृदय का अंधकार भीतर का प्रदीप प्रज्ज्वलित करने से ही मिटेगा। बाह्य प्रकाश से अंतर् प्रकाशित नहीं होता। बाह्य प्रकाश चाहे कितना भी शक्तिशाली हो, प्रखर हो, वह हमारे हृदय को तमहीन नहीं कर सकता। हृदय को ज्योतिर्मय करने के लिए गुहा का द्वार खोलना होता है। पर्दा हटाना, आंतरिक ज्योति का अनावरण करना होता है। भौतिकता ही हमारे अस्तित्व का सम्पूर्ण विवरण नहीं है। हम मानसिक जगत में भी निवास करते हैं और अगर हमारे पास अंतर्ज्योति नहीं है तो हमें विचारों में भटकना होता है। जब तक हमारे हृदय का पर्दा नहीं हटता, हमारी विचारधारा ज्योतिर्मय नहीं होती, हम जो भी निर्णय लेते हैं वे सही नहीं होते, ठीक वही नहीं होते जो

हृदयेश्वर चाहते हैं। बाहर की वस्तुओं के दान से नहीं, अपना अंतर दे देने से, अहंभाव को समर्पित करने से हम अंतस्थ देव के प्यारे होते हैं। उनके प्रेम के, कृपा के पात्र होते हैं। हमारे ऊपर आशीषों की वर्षा होती है।

बाह्य कर्मों का नहीं, कर्मों के पीछे हमारे भाव का मूल्यांकन होता है। बाह्य उन्नति का वहीं तक मूल्य तथा महत्व है जहाँ तक वह आंतरिक सत्ता की चरितार्थता हो। वास्तविक उन्नति आंतरिक है। कोई भी उन्नति अपनी पूर्णावस्था तभी प्राप्त करती है जब वह सत्ता के सर्वोच्च स्तर से युक्त होती है और उसे जीवन में, कर्मों में चरितार्थ करती है। हमें आंतरिक तथा बाह्य दोनों स्तरों पर समान रूप से उन्नत होना चाहिये।

बौद्धिक प्रतिभा से आत्म-ज्ञान पर अधिकार प्राप्त नहीं होता। बाह्य उन्नति से आंतरिक उन्नति नहीं होती। बाह्य व्यक्तित्व के बढ़ने से आंतरिक व्यक्तित्व विकसित नहीं होता। दोनों स्तरों में भेद है। दिशाएँ विपरीत हैं। आयाम भिन्न हैं।

आत्म-सचेतनता, आंतरिक ज्योतिर्मयता सही दिशा में उन्नति की कुंजी है।

परम आत्मा का ज्ञान उच्चतम चेतना है। ज्ञान ऊपर से भी अवतरित होता है। जो इसे धारण करने की क्षमताओं से सम्पन्न होता है, जिसके अंदर यह अवतरित होता है, वह ज्ञानी बन जाता है।

आंतरिक स्तर की देन

आंतरिक स्तर की देन, उसकी महिमा अद्भुत है। हमारा निवास स्थायी सुख में होता है। हृदय उल्लास से भरा रहता है। कठिन से कठिन कार्य भी सरल, सहज, सुगम प्रतीत होता है। आत्म-विश्वास छाया रहता है। हमारा हर पग दृढ़ निश्चय के साथ उठता है। चहुँ ओर विजय के चिह्न दिखायी देते हैं।

अगर मनुष्य आंतरिक स्तर पर सचेतन हो जायें, आत्मा की दृष्टि से अपने आपको तथा जगत को, इसमें स्थित प्राणियों तथा पदार्थों को देख सकें, तो संसार का वातावरण, हमारा पारस्परिक व्यवहार, एक दूसरे को देखने की दृष्टि, जो दोष अधिक गुण कम देखती है; मूल्य, जो हम वस्तुओं को, घटनाओं को प्रदान करते हैं; धारणाएँ, जो अज्ञान पर आधारित हैं और प्रतिक्रिया के रूप में हमारे विचारों की प्रेरक होती हैं; हमारे संस्कार, पांडित्य का अभिमान, अपने आपको दूसरों से उच्च, महान समझने का अभ्यास; सब परिवर्तित हो जायेगा। मानों, सर्प के ऊपर से केंचुली उतर गई हो। हमें सही दृष्टि प्राप्त होगी। जिसमें आत्म-सत्य प्रतिबिम्बित होगा। हम पदार्थों का उचित मूल्यांकन करने में समर्थ होंगे। हमारा हर निर्णय, हर चुनाव, हर मोड़, हर पग अंतर्सत्य पर, उसकी प्रेरणा पर निर्भर करेगा। आत्म-चेतना पर आधारित होगा। पदार्थों के मूल सत्य

के साथ समस्वर होगा। हम कोई ऐसा कर्म नहीं करेंगे जो विश्व-सामंजस्य में बाधक बने, उसे विषाक्त करे। सब आत्मा के प्रभाव से प्रभावित रहेंगे। आत्म-सत्य के पुजारी होंगे। आत्म-प्रेम के, आत्म-एकत्व के सूत्र में संयुक्त होंगे। यही मानव जीवन का सही सच्चा शास्त्रोक्त स्वरूप है। जीवन का यह स्तर हमें उपलब्ध करना होगा। इसकी अभीप्सा हर हृदय में होनी चाहिये। तभी हम परस्पर मिलकर रह सकते हैं। मिलकर चल सकते हैं। मिलकर उन्नति करने में समर्थ हो सकते हैं। और सबसे ऊपर संसार में सुख शांति सामंजस्यपूर्ण जीवन प्रस्थापित करने में सफल हो सकते हैं।

हमें बताया गया है – कुछ आत्माएँ संसार में परिवर्तन लाने के लिए अवतरित हुई हैं, कुछ हो रही हैं। इनका लक्ष्य एक होगा – परम सत्य को पाना, उसे जीवन में अभिव्यक्त करना, चरम एकत्व में उठना, उसमें निवास संभव बनाना। जीवन, कर्म, आत्मा, संपूर्ण व्यक्तित्व प्रभु को समर्पित करना। समर्पित रहते हुए, उनके लिए, उनका होकर जीवन यापित करना।

अंतर्मुखता का भाव साधू, संत, योगी, संन्यासियों के लिए ही नहीं है वरन् उन सभी व्यक्तियों के लिए है जो पदार्थों के अंतर्निहित सत्य के द्वारा प्रेरित-चालित होना चाहते हैं। जीवन-क्षेत्र में उनके आंतरिक सत्य के साथ व्यवहार करना चाहते हैं।

सही भाव

सामान्य चेतना-स्तर पर परिवार में आसक्ति स्वाभाविक है। जब हमारे अंदर आत्म-साक्षात्कार की, सत्ता के सत्य को पाने की प्यास जागती है, हम आसक्ति का त्याग कर देते हैं। उससे ऊपर उठ जाते हैं। परिवार में ऐसे रहते हैं मानों पृथ्वी पर परमेश्वर का कार्य करने के लिए कुछ आत्माएँ परिवार के रूप में एकत्र हुई हैं। हम परिवार को एक दिव्य कर्म के केन्द्र के रूप में देखते हैं। किन्तु, संस्था में आसक्ति, अधिक शक्तिशाली होती है, उसका बंधन अधिक दृढ़ होता है। भले ही हम उसे आसक्ति नहीं समझते। उसकी जड़ हमारे हृदय में अधिक गहरी जमी होती है। उसे उखाड़ना, उससे बाहर आना हमारे लिए सरल नहीं होता। वह तभी संभव होता है अगर भीतर आत्मा सजग हो। संकल्प-शक्ति अदम्य हो। सीमाओं के बंधन हमें काटने लगें। उनमें हम घुटन अनुभव करें। आत्मा मुक्त चेतना में उठने का निर्णय ले चुकी हो। हमारा रोम-रोम सच्चाई से भरा हो। अपनी सब इच्छाओं को हम त्याग चुके हों। सृष्टिकर्ता परमात्मा की इच्छानुसार, केवल उनकी प्रेरणा के द्वारा जीवन-मार्गों पर अग्रसर होने के हम अभ्यासी हों। हमारा समर्पण उनके प्रति पूर्ण हो। जीवन नौका की पतवार उनके हाथों में थमा चुके हों। दायित्व उन्हें सौंप चुके हों। तब हम

किसी संस्था के सदस्य के रूप में इसलिए नहीं रहते, क्योंकि हम उससे बंधे हैं, उस पर निर्भर करते हैं, वरन्, इसलिए कि प्रभु ऐसा चाहते हैं, इसलिए कि यह हमारे अंदर आत्मा का चुनाव है और अगर आत्मा का आदेश हो तो हम तुरत उससे बाहर आ सकते हैं। इसके विपरीत यदि हमारे अंदर बाहर आने की सामर्थ्य नहीं, जीवन की आवश्यकताओं के लिए हम संस्था पर निर्भर करते हैं तो यह हमारी दुर्बलता है। इसका अर्थ है कि अभी भी हमारा निवास सीमित व्यक्ति-चेतना में हैं। हम भूमा-चेतना-स्तर से दूर हैं। आत्मा की मुक्त-चेतना में निवास संभव बनाने के लिए हमें एक अति दीर्घ पथ तय करना है, सत्ता के अन्य स्तरों पर सचेतन होना है, अपने अंदर सच्चे व्यक्तित्व को पाना है। प्रभु को समर्पित जीवन जीना सीखना है।

आज संसार को जिस वस्तु की सर्वाधिक आवश्यकता है वह है एक सामंजस्यपूर्ण जीवन। और वह तभी संभव होगा अगर हम अपने स्वभाव में से उन सभी तत्वों का त्याग करें जो इसमें बाधक होते हैं। और उन सभी तत्वों को धारण करें जो इसमें सहायक सिद्ध हों। चेतना में उत्थान, हृदय में विशालता, स्वभाव में देवत्व सामंजस्यपूर्ण जीवन स्थापित करने के लिए अनिवार्य अनुबंध हैं।

हृदय नेत्र उघारें

हृदय-नेत्र खुलते ही सब परिवर्तित हो जाता है। अदिव्य भासित होनेवाला यह जगत दिव्य तत्व की अभिव्यक्ति गोचर होता है। भागवत उपस्थिति में डूबा, उससे ओत-प्रोत दिखायी देता है। इसके कण-कण में एक दिव्य पुरुष प्रतिबिम्बित होता है। जगत उसकी प्रतिमूर्तियों से भरा एक विराट मंच के रूप में अनुभव होता है। मानों यह सब एक नाटक हो। जिसमें परमेश्वर स्वयं सब कुछ हैं और वे ही दर्शक बन सब देख रहे हैं। वास्तव में यह सृष्टि प्रभु की लीला है। उनका दिव्य खेल है। जिसे वे अपने अंदर अपने लिये अपने आपसे खेल रहे हैं। यहाँ सब वे ही हैं। इस या उस रूप में उनका आत्म-प्रकटन है। आत्मा की दृष्टि से देखने से यहाँ सर्वत्र, अंदर-बाहर परमात्मा दिखायी देते हैं। समर्पण पूर्ण होते ही पदार्थों एवं प्राणियों में उनका दिव्य स्पर्श अनुभव होता है। वे एक सखा की भांति, सहायक की भांति हमारे साथ रहते हैं। हमारा पथ-प्रदर्शन करते हैं, आत्मोन्नति के लिये हमारा मार्ग प्रशस्त करते हैं, उज्ज्वल करते हैं। उस पर हमारे पग संवारते हैं। वे कृपालु हैं। अपनी कृपा में डुबोते हैं। हमें स्वीकार करते हैं। जीवन-भार उठाते हैं। जब तक आत्मा की मुक्त चेतना में हमारा निवास संभव नहीं हो जाता, हम सर्वत्र ब्रह्म दर्शन नहीं करते, हमारा

जीवन उनके संकल्प की चरितार्थता नहीं हो जाता वे हमारा हाथ अपने दिव्य करों में दृढता के साथ पकड़े रहते हैं। यह उन सब का अनुभवसिद्ध कथन है जो मनोमय पुरुष को आगे कर साधन-पथ पर अग्रसर न होकर, अपनी आत्मा के द्वारा मार्ग का, पद्धति का चुनाव करते हैं, जीवन तथा जगत के प्रति दृष्टिकोण अपनाते हैं।

—————

ऊर्ध्वारोहण का पथ उन सब व्यक्तियों के द्वारा चुना जाता है, जिनकी आत्मा में सीमाओं से बाहर आने का संकल्प क्रियाशील हो उठा है, इसके लिए अभीप्सा जाग चुकी है। वे सारी वसुधा को एक परिवार देखते हैं। मानव मात्र को आत्मीय समझते हैं। सब धर्मों के पीछे जाते हैं, तथाकथित धर्मों से, रूढ़िगत धार्मिकता से, रीति-रिवाजों से बनावटी नैतिकता से, दिखावटी आचारों से, प्रचलित आडंबरों से परे जाते हैं। आत्म-चेतना में स्थित होते हैं। उसी की चरितार्थता उनके जीवन का, कर्मों का स्वरूप होता है। आत्मा के स्वभाव को जानना – जो कि तादात्म्य से संभव होता है – उसमें उठना, उसे अपना स्वभाव बना लेना, जो कि सचेतन होने से संभव होता है – उसके संकल्प की अभिव्यक्ति जीवन-लक्ष्य के रूप में चुनना मानव की सच्ची मानवता है।

सही दृष्टिकोण अपनायें

मनुष्य छोटी-छोटी बातों को लेकर परेशान रहते हैं। वे नहीं जानते संसार में आत्मा की सीधी अभिव्यक्ति को छोड़ कर ऐसा कुछ नहीं है जिसके लिए हम परेशान हों। हमें कर्तव्य-पालन की ओर ध्यान देना चाहिये, परेशानियों की ओर नहीं। सुविधा-असुविधा, सफलता-विफलता जीवन क्षेत्र में, आत्म-विकास के मार्ग में सामान्य घटनाएँ हैं। हमें लक्ष्य के प्रति एकाग्र रहना है। उसकी प्राप्ति में, उसकी संसिद्धि में दूसरी सब वस्तुएँ एक ओर रख देनी हैं। अगर लक्ष्य के प्रति हम सच्चे हैं, समर्पित हैं, अंतिम विजय सुनिश्चित है।

संसार में आत्मा का ही अस्तित्व है। आत्मा का ही मूल्य है, आत्मा का ही महत्व है। यह चराचर जगत आत्मा की ही अभिव्यक्ति है। हृदय का पर्दा हटते ही यह बात समझ में आ जाती है। निस्संदेह, हम बहुत-सी चीजें देखते हैं जो महत्वपूर्ण हैं। उनसे पीछे नहीं हट सकते। उन्हें अधूरा नहीं छोड़ा जा सकता। फिर भी उनके लिए परेशान नहीं होना चाहिये। कारण, परेशान होना अपने आपमें कोई समाधान नहीं है। वह हमारी किसी प्रकार भी सहायता नहीं कर सकता। हमें चाहिये कि सर्वोच्च शक्ति की ओर उद्घाटित हों। सहायता के लिए उसे पुकारें। हमारी सत्ता की गइराई में सर्वज्ञ चेतना का,

सर्वशक्तिमान दिव्य पुरुष का निवास है। वहाँ नीरव होकर बैठें। उस दिव्यता में अपने आपको उँडेल दें। मानों सारी सत्ता पिंघल रही है। प्रभु में समा रही है। और हम देखेंगे कि हमें समाधान उपलब्ध है। सृष्टि में ऐसी कोई समस्या नहीं जिसका समाधान वहाँ न हो। ऐसी कोई ग्रन्थि नहीं जिसका उपचार उपलब्ध न हो। हमें अपने अंदर आत्म-विश्वास उत्पन्न करना है। आत्म-शक्ति जगानी है। कर्तव्य पालन में दृढ़ रहना है। परेशानियों से, अड़चनों से जूझना सीखना है। हर व्यक्ति के भीतर, उसके पीछे भागवत शक्ति है। अगर हम सच्चाई के साथ उसका आह्वान् करें उसकी सहायता, उसकी कृपा हमें प्राप्त होती है। इस निश्चय के साथ कर्तव्य-पथ पर बढ़ना चाहिये। प्रथम स्वयं जागना है। तत्पश्चात् संसार को जगाने का, मानव-चेतना में उत्थान लाने का, उसे नई चेतना के, अतिमानसिक चेतना के प्रति सचेतन बनाने का अभियान प्रारंभ करना है।

अगर ऐसा करने में हम आज समर्थ नहीं हैं, अगर आज हमें गन्तव्य दिखायी नहीं दे रहा है, पथ भी स्पष्ट नहीं है तब भी साहस न छोड़ें। पथ-प्रदर्शन के लिए प्रार्थना करें। अवश्य सहायता होगी। भागवत कृपा में अटूट विश्वास सदा सहायक होता है। अंधकार पूर्ण गलियों से हमें पार कर देता है। नात्र संशयः।

मानव हित जीवन जियें

संसार के हर क्षेत्र में प्रगति है। हर देश, हर जाति उन्नति कर रही है। प्रतीत होता है मनुष्य पृथ्वी पर जीवन-स्तर ऊँचा उठाने में, उसे स्वर्ग से अधिक समृद्ध बनाने में दृढ़-संकल्पित है। कहा जा सकता है कि मनुष्य ने सब दिशाओं में, सब क्षेत्रों में सराहनीय प्रगति की है। और वह इसके लिए, अपनी इन असाधारण उपलब्धियों के लिए अगर गर्वित अनुभव करे तो यह भी असंगत न होगा।

किन्तु, यही सब कुछ नहीं है। हमारी प्रगति जीवन के केवल बाह्य स्तर पर है। शास्त्रों का कथन है और हम सब का अनुभव भी यही कहता है कि मानव सत्ता का, उसके जीवन का बाह्य स्तर ही सब कुछ नहीं है। बाह्य स्तर उसकी सत्ता का केवल एक आंशिक भाग है और एक अति विशाल भाग इसके पीछे है। जो आज हमारी पहुँच के परे है।

मनुष्य ने बौद्धिक स्तर पर प्रगति की है। किन्तु, अगर बुद्धि पर आत्मा का, एक उच्च आध्यात्मिक ज्ञान का नियंत्रण नहीं, अगर एक ज्योतिर्मय विवेकशीलता उसके पीछे नहीं तो वह विनाशकारी पदार्थों की रचना कर सकती है। और हम देख रहे हैं आज तथ्य यही है। मनुष्य की सत्ता में प्रकृति ने अहंकार की रचना की है और हम मानते हैं उसके व्यक्तित्व की गठन में

एक दिन इसकी अनिवार्यता थी। किन्तु, विकास की एक सीमा-रेखा पार करने के पश्चात् इसकी आवश्यकता समाप्त हो जाती है – और यही कारण है कि अब वह चाहती है कि मनुष्य अपने अहंकार को त्याग दे। उसे आत्मा को उत्सर्ग करे और स्वयं आत्मा के प्रभाव में रहे। आत्मा से प्रेरित-चालित होकर जीवन मार्गों पर अग्रसर हो। उसके दिव्य संकल्प की चरितार्थता को जीवन-लक्ष्य के रूप में चुने।

जीवन-क्षेत्र में हमें अपनी खोज को बाह्य स्तरों तक ही सीमित रखकर संतुष्ट नहीं होना चाहिये। उसके साथ-साथ आन्तरिक स्तरों पर अनुसंधान करना, पदार्थों के अन्तर्निहित सत्य को, उनकी आन्तरिक प्रकृति को जानने का प्रयास करना चाहिये। अगर हम आन्तरिक वस्तुओं का मूल्य नहीं समझते, उन्हें महत्व प्रदान नहीं करते तो चाहे हम कितनी भी उन्नति करें सब सारहीन रहेगी। हमें आत्मा में जागना होगा। अहंकार से ऊपर उठना होगा। दिव्य चेतना में, अतिमानसिक स्तरों पर विचरण करने में समर्थ होना होगा। इसके बिना कोई भी स्थायी उन्नति, सामाजिक स्तर पर सामन्जस्यपूर्ण जीवन – जो कि सम्पूर्ण जाति की आन्तरिक तथा बाह्य उन्नति के लिए अनिवार्य स्थिति है – संभव नहीं होगा।

हम देख रहे हैं आज मनुष्य के पास सब कुछ है। किन्तु, शान्ति नहीं है। पृथ्वी पर मानव-जीवन समृद्धता की पराकाष्ठा

पर है, परन्तु उसमें सामन्जस्य नहीं है। जातियाँ परस्पर मिलकर व्यापार चला रही हैं, किन्तु उनमें आत्मा की विशालता से परिपूर्ण एकता नहीं है। जिन धर्माध्यक्षों के हाथों में समाजों की बागडोर है और सम्पूर्ण मानव-जाति को मुक्ति प्रदान कराने का दावा कर रहे हैं, उनमें व्यक्तिगत अहंकार है। वे सृष्टिकर्ता को समर्पित नहीं हैं। सब निर्णय स्वयं लेते हैं। सब चुनाव उनके अपने होते हैं। वे सिद्धान्तों को लेकर चल रहे हैं जिनके निर्माता वे स्वयं होते हैं। उनके हृदय का आवरण नहीं गया। आत्मा की स्वाभाविक सत्यता से उनका परिचय नहीं है। वे मानव मात्र के प्रेम में, उसके मंगल में सर्वस्व की आहुति प्रदान करने को उद्यत नहीं हैं। हम यह नहीं कह सकते कि इस दिशा में हमने प्रयास नहीं किये। प्रयास हर युग में होते रहे और हो रहे हैं, हर संभव प्रकार से हो रहे हैं, किन्तु सफलता का द्वार दूर ही दूर खिसकता दिखायी दे रहा है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि हम सही दिशा में, सही ढंग से प्रयास नहीं कर रहे हैं। शायद हम मूल को सींचना भूल गये और पत्तों पर ही पानी छिड़कते रहे और उसी से आशा करते रहे कि वृक्ष हरा-भरा रहेगा।

हमें मूल से संबध स्थापित करना सीखना होगा। मानव सत्ता तथा जगत सत्ता का मूलभूत सत्य परम आत्मा है। एक सीमाहीन अनन्त दिव्य सत्ता है। जिसे चरम अस्तित्व भी कहा

गया है। जब तक हम अपनी सत्ता में उसके सत्य का, उसकी चेतना का अवतरण संभव नहीं बनायेंगे तब तक हमारे अंदर तथा जगत के अंदर कोई दिव्य परिवर्तन नहीं आ सकता। हम किसी आध्यात्मिक रूपान्तर की आशा नहीं कर सकते। हमें मूल की ओर मुड़ना, मूल सत्य को खोजना, जीवन में उसकी अभिव्यक्ति को संभव बनाना होगा। तभी हम व्यक्तिगत, जातिगत तथा समाजगत समस्याओं से ऊपर उठ सकेंगे। तभी संसार स्थायी रूप से सुख का श्वास लेने में समर्थ होगा। आत्मा का प्रभाव पृथ्वी के वातावरण में, मानव-जीवन में सतत बना रहेगा।

यह कार्य राजनीतिज्ञों का नहीं। पार्टियों को पाविर्तित करते रहने से भी यह सिद्ध नहीं होगा। संसार की सब जातियों को मिलकर अपने-अपने देश में, धर्मों में आध्यात्मिक व्यक्तियों का निर्माण करना होगा। जो व्यक्तिगत, जातीय तथा धार्मिक सीमाओं से सर्वथा ऊपर होंगे। आत्म-ज्ञान में, आन्तरिक चेतना में जिनका प्रवेश सुलभ हो। सारा विश्व एक परिवार है, इस सूत्र का सत्य जिनके स्वभाव की वस्तु बन गया हो। जो केवल विश्व-मंगल के लिए ही जीवन धारण कर रहे हैं। सब समय भागवत संकल्प से युक्त हैं। उसकी चरितार्थता ही जिनके जीवन का, कर्मों का स्वरूप है। ऐसे, सीमित चेतना-परिधि से मुक्त, मानव स्वभाव की दुर्बलताओं से, दृष्टि की संकीर्णताओं से ऊपर व्यक्ति, उनका एक समूह संसार की रक्षा करने में, इसे सही

मार्ग दर्शाने में समर्थ होगा। जिस मार्ग से चलकर कोई भी आत्मा का विशाल साम्राज्य अधिकृत करने में, उसे मानव-जीवन की व्यावहारिक वस्तु बनाने में समर्थ हो सकता है।

एक ओर, पूर्णतः निर्वैयक्तिक चेतना में, आत्मा की मुक्तावस्था में निवास तथा दूसरी ओर, मानव जाति के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करने में वही व्यक्ति सफल हो सकता है जिसकी चेतना का पतला सा सूत्र भी निम्न प्रकृति की मांगों से, अहंकार के दावों से, किसी जाति से, धर्म से, सम्प्रदाय से बंधा न हो। जो व्यक्ति सबका हो, सबके लिए हो, जिसकी चेतना में हर मानव आत्मीय हो। सखा हो। बन्धु हो। पिता की संतान हो। जिसका हर चिन्तन, हर कर्म, हर प्रयास मानव-मंगल की दिशा में प्रेरित हो। जो किसी भी व्यक्ति-विशेष में, चाहे वह हमारी दृष्टि में कितना भी महान है, देश-विशेष में, चाहे वह अपने भूतकाल में कितनी भी उच्च संस्कृति से युक्त था, धर्म विशेष में – चाहे वह कितना भी प्राचीन हो, चाहे भगवानों के द्वारा, ईश्वर के पुत्रों के द्वारा प्रेरित-चालित क्यों न हो – आसक्त न हो।

भागवत उपस्थिति को देखने की दृष्टि अभी हमें प्राप्त नहीं है। मूल अस्तित्व के विषय में हम अचेतन हैं। हम अपने आपको शरीर समझते हैं। यह अज्ञान है। आत्मा के साथ जिसका तादात्म्य नहीं, आत्म-एकत्व के प्रति जो सचेतन नहीं, जो पृथकत्व की चेतना में निवास करता है उसे शास्त्रों में अज्ञानी कहा गया है।

नया चरण अनिवार्य

जो भी महापुरुष आध्यात्मिक स्तर पर आज समाज का पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं, या जो करते रहे हमें उनके प्रति कृतज्ञ होना चाहिये और हम हैं। वे सब सृष्टिकर्ता परमेश्वर का कार्य कर रहे हैं। संसार में भागवत यंत्र हैं और अपनी क्षमता के अनुसार मानव चेतना के उत्थान में सहयोग प्रदान करते हैं। संसार का जीवन सुखी, अज्ञान-अंधकार से मुक्त करने का प्रयास उनके जीवन का, कर्मों का स्वरूप है। किन्तु इस महान अभियान के विषय में हमें कुछ कहना है। क्या हमने कभी सोचा है कि हम अपने इस दिव्य आदर्श में अब तक सफल क्यों नहीं हुए ? उसका कारण क्या हो सकता है ! क्यों अभी भी मानव चेतना अज्ञान से तिरोहित है, संसार का वातावरण अंधकार से भरा है। हम भूतल से अज्ञान की शक्तियों को दूर भगाने में असमर्थ हैं। हम मानते हैं हर महापुरुष अपने प्रयास में सच्चा था। मनुष्य-स्वभाव-जनित हृदय की अभिलाषाओं को त्याग कर, मन-इंद्रियों की गति को ऊर्ध्वमुखी करना, चित्त की चंचलता का निरोध, आत्म-संयम, मोह-आसक्ति का त्याग, स्वार्थ एवं लोभ से ऊपर उठना उसके पुरुषार्थ का स्वरूप था, किन्तु, अनुभव कहता है कि हमारी ओर से केवल इतना पर्याप्त नहीं है। अगर होता तो हम स्वर्णिम परिणाम बहुत पहले

देख पाते। कारण, इस प्रकार के प्रयास संसार में बहुत बार हुए हैं। ऐसा वातावरण बहुत बार तैयार किया गया है। किन्तु मानव-चेतना-स्तर उत्थान लाभ नहीं किया। मनुष्य अपनी सीमित चेतना से बाहर नहीं आया। अपनी प्रकृति का, स्वभाव का अतिक्रमण संभव नहीं बना पाया। अगर सामूहिक रूप में मानव चेतना कुछ ज्योतिर्मय हुई थी तो वह भी क्षणिक था। मनुष्य को अपनी समस्या का स्थायी समाधान अब तक प्राप्त नहीं हुआ है। वह अज्ञान से, सीमित व्यक्ति-चेतना की परिधि से बाहर नहीं आया है। वह अभी भी अपने आपको शरीर समझता, शारीरिक मांगों को अपनी मानता है। अतः हम कहेंगे कि हमें कुछ और करना है। अभी भी कुछ और करना शेष है। व्यक्तिगत पुरुषार्थ को नया स्वरूप प्रदान करना है। हमें सच्ची यंत्रता प्राप्त करनी है। परमेश्वर के हाथ की बांसुरी बनना है। उनकी ओर उद्घाटित रहना है। जिससे कि उनकी शक्ति एवं चेतना हमारे द्वारा संसार में प्रवाहित हो सके। हमें वर्तमान व्यक्तित्व को पूर्ण रूपेण समर्पित कर देना है। उस चेतना में, उस भाव में उठना है जहाँ प्रभु आकर हमारे अंदर निवास करने लगते हैं। मानों अपने सृष्टि-रूपांतर के कार्य को – स्वयं करने जा रहे हैं। और जब किसी कार्य को प्रभु चुनते हैं, उसके पीछे उनका संकल्प होता है, तब क्या है वह जो पूरा न हो ! जिसका फल संसार न भोग सके !

काल-चक्र

(मेरा चिन्तन, मेरा मनन, मेरी साधना है। उसकी अभिव्यक्ति मेरा लेखन, मेरी प्रार्थना होती है। मैं अंतस्थ देव के दिव्य पादाम्बुजों में बैठ कर, भीतर डूब कर लिखता हूँ। विषय का केन्द्र, उसका मूल एक प्रेरणा की अभिव्यक्ति होता है। उसकी सजावट वातावरण की देन, उसका प्रभाव होता है।

हमारी पूजा में, ध्यान में, प्रार्थना में भीतर डूबने में उच्च चेतना के निवास में एवं हमारे कर्म में – यहाँ तक कि जीवन की छोटी से छोटी क्रियाओं में भी हमारे चेतना-स्तर में अंतर नहीं होना चाहिये। सब एक दिव्य चेतना की अभिव्यक्ति, सबके पीछे एक ही संकल्प होना चाहिये।)

सभी काल के अंतर्गत हैं। सब के सिर पर काल-चक्र घूम रहा है। हर श्वास में आयु क्षीण हो रही है। हर समय श्मशानों में धुँआ उठता दृष्टिगोचर हो रहा है। हर क्षण किसी न किसी गृह में से रोने-पीटने की आवाज सुनायी देती रहती है। बिना माता-पिता के शिशुओं को बिलखते देख कर, माताओं को संतप्त लख कर, पिता से पुत्र को बिछुड़ा हुआ पा कर सब के हृदय द्रवित होते हैं। सब शोक में डूबते हैं। किन्तु, फिर भी, हे प्रभो ! मनुष्य नहीं जाग रहे हैं। जीवन और जगत के प्रति इनका दृष्टिकोण परिवर्तित नहीं हो रहा है। पदार्थों की क्षण-भंगुरता का रहस्य इनकी समझ में नहीं आ रहा है। ये आकारों में आसक्त हैं। निराकार सत्ता के साथ संबंध स्थापित करने का,

भीतर छिपी आत्मा की खोज का प्रश्न इनके मन में नहीं उठ रहा है। इनके चित्त मोह के द्वारा ग्रस्त हैं। विवेक-बुद्धि पर पर्दा पड़ा है। स्वयं जागने में असमर्थ दिखायी दे रहे हैं। ये कृपा के पात्र हैं। इन्हें सहायता चाहिये।

जहाँ महल थे वहाँ खंडहर पड़े हैं। जहाँ वीणा और बांसुरी की मधुर ध्वनि सुनायी पड़ती थी वहाँ सब सुनसान है। जो संसार को अपने पीछे चलाते थे उनका केवल नाम सुंन रहे हैं। वीर शिरोमणियों की तुरही अब नहीं बजती, शायद उस पर धूल जम गई हो। विश्व-विजेताओं का नाम केवल इतिहास में पढ़ने को मिलता है। युग-प्रवर्तक आदर्श के लिए याद किये जाते हैं। जगत-गुरुओं का नाम उनके शिष्य ही लेते हैं। पूज्य आचार्यों को हम भुलाने की ओर हैं। धर्मशास्त्रों को, आचार-शिक्षा को भूतकाल की वस्तु कह कर उड़ा दिया जाता है, सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जा रहा है। फलस्वरूप प्राचीनतम सभ्यता का सूर्य अस्ताचल की ओर बढ़ रहा है। किन्तु, फिर भी, हे प्रभो ! ये जीवन की ऐसी नींव जमा रहे हैं मानों, सदा यहीं रहेंगे और दूसरों की भांति यहाँ से प्रस्थान करने का आदेश इन्हें प्राप्त नहीं होगा। मानों, काल-चक्र उनके लिए ही था जो चले गये और जगत को त्याग करने का, मृत्यु के मुख में जाने का नियम – जो कि संसार में अटल है – इनके ऊपर लागू नहीं होगा। कारण, इन्हें कहीं उसका चिह्न दिखायी नहीं देता, उसकी

छाया गोचर नहीं होती। इनकी दृष्टिहीनता ने, अज्ञानता ने इन्हें विवेकहीन बना दिया है।

भयंकर दुखद, तपा देनेवाली ग्रीष्म ऋतु बीतती है। सुखद सुहावनी वर्षा ऋतु आती है। वर्षा की फुहारों में उसकी रिमझिम बरसती बूंदों में हम बिलकुल भूल जाते हैं कि ग्रीष्म ऋतु फिर भी आएगी, तपती धरती पर हमें पुनः चलना पड़ेगा। कठोर बर्फीली सर्दी के बाद, तीर की तरह चुभनेवाली शीत के पश्चात् भीनी-भीनी सुगंध से भरपूर महकती वसन्त ऋतु के आगमन की आशा हम हृदय में संजोते हैं। उसकी उज्ज्वल उषाओं के सुनहले आँचल के नीचे हमें यह याद नहीं आती कि उसके साथ-साथ, उससे पहले एक शुष्क, नीरस, निर्जीव-सी वस्तु, एक उजड़ा-सा, लुटा-सा दृश्य सब ओर उसका अनुसरण करते हुए, पतझड़ आयी थी। चहुँ ओर प्रकृति निष्प्राण-सी, लता पेड़-पौधे नग्न-से हो उठे थे।

हे प्रभो ! मनुष्य शीघ्र ही दुख की घड़ियों को भूल जाते हैं। वे सुख में सुधि खो बैठते हैं। सुख उन्हें सब भुला देता है। किसी अनिष्ट का, अप्रत्याशित घटना का सामना करने की, उसके लिए सब प्रकार सज्जित रहने की बात नहीं उठाते। वे अचेतन हैं। विस्मृति में डूबे रहना, केवल वर्तमान में ही निवास करना उनका स्वभाव बन गया है। क्या जवानी का स्थान बुढ़ापा नहीं छीन लेता। काले घुंघराले केश सन के समान श्वेत

नहीं हो जाते ! हर जवान को एक दिन चलने के लिए छड़ी और उठने के लिए चारपाई नहीं पकड़नी पड़ती ! क्या धनी तथा निर्धन सभी एक दिन खाली हाथ नहीं हो जाते ! क्या अंत में हर व्यक्ति को अग्नि में जलना नहीं पड़ता ! सब को मिट्टी में मिलना नहीं मिलना होता ! क्या हम नहीं जानते कि एक दिन सबको न चाहते हुए भी जाना होता है ! संसार का त्याग करना होता है ! जो सदा अकेला ही खाता रहा, अपने लिए जिया, अहंकारी, घमंडी जो न विनयी था न मृदुभाषी, जिसने कभी उपकार नहीं किया, उसे भी एक दिन दूसरों का सहारा नहीं खोजना होता ! सहायता की याचना नहीं करनी होती ! एक दिन जब दृष्टि धोखा दे जाती है, हम दूसरों पर निर्भर नहीं करते ! क्या हर पदार्थ का अंतिम रूप मिट्टी नहीं है ! जिस वस्तु पर सब मोहित हो रहे हैं वह मिट्टी का ही एक रूप नहीं है ! क्या मनुष्य नहीं जानते कि इस सृष्टि का निर्माणकर्ता कोई है और हमें उस परमेश्वर की खोज करनी चाहिये ! हमारे हृदय में उसके दर्शन की अभिलाषा उठनी चाहिये। क्या वे देवाधिदेव हमारे जीवन के जीवन नहीं हैं ! क्या हमारा यह प्रथम कर्तव्य नहीं होता कि हम अपने पिता को प्राप्त करें। उनका आदेश-पालन हमारे जीवन का, कर्मों का स्वरूप हो।

अगर मनुष्य संसार में तृप्ति ही खोजता रहेगा, भोगों के प्रति अपनी भूख मिटाने को, अधिक से अधिक

स्वपरिवार-पालन को मानव-जीवन समझता रहेगा, तो उसके अंदर स्थित उसका सच्चा व्यक्तित्व – जो कि सृष्टि में शाश्वत यात्री है – सदा प्यासा रहेगा। अपना गंतव्य प्राप्त करने में सफल नहीं होगा। हम आत्म-साक्षात्कार से, विकास की उच्च भूमिकाओं से वंचित रहेंगे। अहंकार, मन, इंद्रियों की इच्छाओं की पूर्ति में ही शक्ति, चेतना तथा जीवन का बहुमूल्य समय नष्ट करते रहेंगे। आत्मोन्नति, मुक्त-चेतना में निवास एक सुखद स्वप्न बनकर रह जायेगा। एक अर्थहीन, असफल जीवन, आवागमन के चक्र में बंधे रहना हमारी नियति रहेगी।

हम संसार में क्यों आये हैं ! केसे आये हैं ! कहाँ से आये हैं ! किसके द्वारा लाये गये हैं ! उसके पश्चात् कहाँ चले जाते हैं ! यह सब व्यवस्था किसकी है ! वह कौन है ! कहाँ रहता है ! केसे मिलता है ! संसार में आने के पश्चात् हमारा प्रथम कर्तव्य क्या होना चाहिए ! क्या ये प्रश्न हमारे नहीं हैं ! हमारे मन में नहीं उठने चाहियें ! अगर हमने जीवन में दूसरा सब कुछ किया है – जिस रूप में संभव हुआ जीवन को भोगा है, जिस दिशा में उचित समझा प्रगति की है – किन्तु, उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर, शंकाओं का समाधान नहीं खोजा – हम भ्रांति में हैं। हम जीवन तथा पदार्थों को स्थायी समझते हैं। उनसे चिपके हुए हैं और इस प्रकार भूलों को बार-बार दुहराते, भ्रांत पथ पर भटकते चले आ रहे हैं।

एक शासन-पार्टी उठती है, दूसरी गिरती है, एक धर्म फैलता है, दूसरा मिटता है, पुरानी सभ्यताएँ समाप्त होती हैं, उनका स्थान नयी ग्रहण करतीं हैं। हर व्यक्ति अपने धर्म को श्रेष्ठ मानता है, परधर्मियों को अधर्मी कहता है। हर मत अपने शास्त्र को सर्वोच्च ज्ञान की अभिव्यक्ति समझता है और दूसरे शास्त्रों को भ्रांतिपूर्ण कहता है। हे प्रभो ! कब तक मानव इस संकीर्णता में निवास करते रहेंगे ! हृदय की इस क्षुद्रता को महानता समझते रहेंगे। कब वे इससे ऊपर उठेंगे ! आत्मा की विशालता में निवास संभव बनायेंगे ! जहाँ वे देखेंगे कि संसार में जीवन एक है, सब धर्मों का, सब शास्त्रों का मूल एक ही दिव्य चेतना है। जहाँ से सृष्टियाँ सर्जित होती हैं, वह चरम उद्‍गम एक है। हम सब एक पिता की संतान हैं। एक धरती माता की गोद में पल रहे हैं।

सभी दूसरों को शांत रहने का पाठ पढ़ाते हैं। आत्म-संयम की शिक्षा प्रदान करते हैं। सत्य आचरण पालन को कर्मों में कर्म बताते हैं। सभी देश जाति तथा धर्म हित दूसरों को बलिदान के लिए तत्पर रहने को प्रोत्साहित करते हैं। यह मानव-स्वभाव है। हम अपनी ओर कम दूसरों की ओर अधिक देखते हैं। हमारे सब उपदेश, शास्त्रों की शिक्षा दूसरों के लिए होती है। अवसर आने पर हर आदर्श व्यक्ति कर्तव्य से पीछे हटता देखा जाता है। मनुष्य का सामान्य स्तर यही है, उसकी

चेतना अभी धूमिल है, सीमित है, अज्ञानमय है, तमसाच्छन्न है। उसके जीवन में आदर्श भावना का स्थान स्वार्थ भावना ग्रहण किये है। वह देश जाति अथवा संसार के लिए न जी कर अपने लिए जीता है। वे विरले ही हैं जो इस विषय में सचेतन हैं और आदर्शमय जीवन यापित करते हैं। जिनका जीवन अहंकार की परिधि से बाहर प्रवाहित होने लगा है, जो सीमित व्यक्ति-चेतना का अतिक्रमण कर रहे हैं, ये जो भी करते हैं अपनी सर्वोच्च बुद्धि के अनुसार केवल वही करते हैं जिसमें मानवता का हित प्रथम स्थान रखता है, जिस ओर हृदयेश्वर का इंगित होता है। आत्मा जो कर्तव्य इनके लिए चुनती है।

हे मानव ! तेरे भीतर कोई तुझसे पूछ रहा है कि कब तक तू इस प्रकार पुरानी लीक पर दौड़ता-भटकता, चक्कर काटता रहेगा ! कब तक विश्व-प्रकृति की ये शक्तियाँ तुझे कठपुतली बनाकर नचाती रहेंगी ! कब तक तू अज्ञान और अंधकार की शक्तियों के हाथ का खिलौना बना रहेगा ! अब समय आ गया है। एक देदीप्यमान दिव्य सूर्य के समान भागवत चेतना पृथ्वी पर अवतरित हुई है। जो मानव को अतिमानव में, एक देव-मानव में रूपांतरित करने में सब भांति समर्थ है। उसके अंधकार पूर्ण जीवन को दिव्य जीवन का स्वरूप प्रदान करने में — जो जीवन आत्मा के संकल्प की सीधी अभिव्यक्ति होगा — पूर्ण सक्षम है। अतः जाग ! उठ और अपना समयोचित कर्तव्य

निर्धारित कर। अपने तथा अपनी जाति के जीवन का रूपांतर, आत्मा की दिव्यता में उसका दिव्यीकरण लक्ष्य रूप में चुन। जो बीज रूप में भीतर है अवश्य एक दिन प्रस्फुटित होगा। धरती का जीवन स्वर्ग के समान सुखी, वैभवपूर्ण होगा। इस दिव्य वाणी में विश्वास कर। वसुंधरा की गोद में सुनहरे अंकुरों का यह प्रस्फुटन जो हम देख रहे हैं, समाजों में यह जागृति, मानव-एकता के सिद्धान्त की ओर देशों का, जातियों का यह झुकाव इसका आधारभूत प्रमाण है।

जो व्यक्ति मन, शरीर तथा इंद्रियों की प्रकृति को, इनके स्वभाव को अपना स्वभाव नहीं समझता, इन्हें अपने से पृथक अनुभव करता है, इनकी मांगों को अपने से बाहर देखता है, जिसे पृथक्करण की अनुभूति प्राप्त है, जो अहंकार से, उसकी सूक्ष्म चालों से सर्वथा ऊपर है, वह व्यक्ति अपने सीमित व्यक्तित्व की परिधि को अतिक्रमण करने में समर्थ होता है। अन्तःस्थित सत्ता के साथ, अपने सच्चे स्वरूप के साथ तादात्म्य लाभ करने में सफलता प्राप्त करता है। हमें अंतर्सत्ता के प्रति सचेतन होना होगा। मन, शरीर, इंद्रियाँ रूपी यंत्र की नहीं, उनके पीछे छिपे यंत्री की, अंतस्थ पुरुष की चेतना में निवास करना सीखना होगा। पूर्ण सचेतनता ही आत्म-साक्षात्कार की कुंजी है।

प्रकृति से अपने आपको पृथक् कर पुरुष की चेतना में निवास करना सांख्य योग की साधना का मूल मंत्र है। अपने

आपमें यह एक महान सिद्धि है। हमारे अंदर अगर कोई कामना उठे, वासना जागे, राग-द्वेष, ममता-मोह, काम-क्रोध आदि उभरें तो हम अपने आपसे कहते हैं कि यह मैं नहीं हूँ, यह मुझमें नहीं है। प्रकृति में है। प्रकृति का व्यापार है। मैं तो वह हूँ जिसका इन वस्तुओं से कोई संबंध नहीं, ज़िसे ये स्पर्श नहीं कर सकतीं। इंद्रियों के भोग जिसे आकर्षित नहीं करते। मान-अपमान की गंध छूती नहीं। मोह-आसक्ति की परछायी जिस पर नहीं पड़ती। दुर्बलों के लिए जो सदा अलभ्य है। असत्य के पुजारियों के लिए जो दुर्लभ है। इंद्रियों में रमण करनेवालों के लिए अप्राप्त है। मेरे और उनके बीच सदा दूरी रहती है जिनका अपने ऊपर संयम नहीं, इंद्रियों पर नियंत्रण नहीं, जिन्होंने अंतःकरण को शुद्ध नहीं किया, आवेगों को, कामनाओं को जय नहीं किया। लोलुपता, स्पृहा, भय, क्रोध, शोक, मोह, शत्रुता आदि का वर्जन नहीं किया। जो भीतर से त्यागी नहीं हैं, जो तपस्या नहीं करते अर्थात् सत्य की प्राप्ति के लिए कष्ट सहन करने से कतराते हैं। ब्रह्मचर्य पालन में जिनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं। जो मिथ्याचारी हैं, जिनके आचरण में सत्यता नहीं, जिनका जीवन केवल अपने लिए है, जो बलिदान से जी चुराते हैं। वे मुझे नहीं देख पाते। मैं वह हूँ जो अजर, अमर, अविनाशी है। सदा से था और सदैव रहेगा। जिसे संसार के सुख-दुख, राग-रंग, विषय-भोग स्पर्श नहीं करते। जो मुक्त है। शुद्ध

है। स्वतंत्र है। जो सब प्रकार के बंधनों से परे है। वर्तमान सीमित चेतना से युक्त असहाय प्रतीत होनेवाला यह मानव प्राणी नहीं, मैं अक्षर पुरुष हूँ। प्रकृति नहीं, यह बाह्य सत्ता नहीं, मैं अपने मूल स्वरूप में एक अजन्मा चेतन पुरुष हूँ। आनंदमय हूँ।

किन्तु, जब तक मनुष्य की चेतना अज्ञान में निवास करती है, जब तक उसके हृदय पर आवरण है, उसे वस्तुओं के सही स्वरूप को देखने की, उनके आभ्यंतर सत्य को अनुभव करने की दृष्टि प्राप्त नहीं होती। जब तक वह अपने आपको बाह्य पुरुष से पृथक् नहीं करता और अपने सच्चे स्वरूप में स्थित नहीं होता, जब तक वह यंत्र है और यंत्री नहीं बन जाता, तब तक दुख-कष्ट रहेंगे, जीवन-मरण रहेगा, जन्म-मुत्यु रूपी आवागमन के चक्र में घूमना हमारी नियति रहेगी।

श्रीअरविंद अपने महाकाव्य 'सावित्री' में कहते हैं – जब तक अज्ञान है दुख भी अवश्य रहेगा। क्या है यह अज्ञान, हम इसे संक्षेप में इस प्रकार कह सकते हैं, हम जो नहीं हैं, जो हमारा सच्चा स्वरूप नहीं है – शरीर, मन तथा इंद्रियों का यह संघटन – इसे अपना आप समझना। और दूसरी ओर, हम जो हैं, जो हमारा वास्तविक स्वरूप है – अंतस्थ आत्मा, उसके ज्ञान का अभाव, उसके प्रति अचेतन रहना – अज्ञान का द्विविध स्वरूप है।

वास्तव में यह शरीर रूपी पिंजरा हम नहीं हैं। यह हमारा सच्चा व्यक्तित्व नहीं है। रामकृष्ण की भाषा में यह थैला है।

जिसे वे खोल कहा करते थे। मनुष्य अगर चाहें, थोड़े-से अभ्यास से, एकाग्रता के द्वारा, संकल्प शक्ति में वृद्धि कर, बाह्य सत्ता के पीछे, दूर हृदय की गहराई में – पूर्ण शुद्धि जहाँ अनिवार्य शर्त है – अपने आपको स्थित देख सकते हैं। उस स्तर पर निवास करते हुए, अपने अनुभवसिद्ध कथन में हम कहेंगे, हमें हमारी यांत्रिक सत्ता, अपने सम्मुख, बाहर दिखायी देती है। हृदय-गुहा की नीरवता में शांति का अनंत अमृत-सिंधु हमारे चहुँ ओर हिलोरें लेता है। वही हमारी तथा जगत-सत्ता का मूल है। हमारा यथार्थ स्वरूप है।

किन्तु, कौन है वह नर-पुंगव जो शरीर को भूख लगने पर कहने में समर्थ हो कि यह भूख मेरी नहीं, मुझे नहीं लग रही है। यह तो इस शरीर में है और इसी प्रकार इंद्रियों के व्यापारों के विषय में कहने में समर्थ हो। जो अपमान होने पर कह सके कि यह अपमान मेरा नहीं हो रहा है। मेरे अंदर अहंकार का है। इच्छाओं के उठने पर कह सके कि ये इच्छाएँ मन की हैं, मेरी नहीं। व्याधि आदि के विषय में उनसे पृथक् अनुभव कर सके और कह सके कि यह सब शरीर के क्षेत्र में घटित हो रहा है, मेरे अंदर नहीं। मृत्यु समीप पहुँचने पर मुस्कराहट के साथ कह सके मैं अजर-अमर अविनाशी हूँ, शाश्वत हूँ, मुक्त हूँ और यह मृत्यु इस चोले की होती है जिसे मैं हर जन्म में नये अनुभवों के

लिए, आत्म-विकास को और आगे बढ़ाने के लिए नवीन रूप में, नये यंत्र की भांति ग्रहण करता हूँ।

हम समझें या न समझें, माने या न मानें तथ्य यही है। अगर हम अपनी बाह्य, यांत्रिक सत्ता का विश्लेशण करें, हम देखेंगे कि महत्वाकांक्षाएँ हमारे अहंकार में होती हैं। हमारी सत्ता में सुख-दुख का भोक्ता, हमारा प्राणमय पुरुष होता है। इस शरीर को यंत्र बनाकर वही भोगता है। सुख-दुख की अनुभूति उसका विशिष्ट कर्म है। यह कामनाओं का क्षेत्र है। राग-द्वेष, मोह-आसक्ति, घृणा आदि इसी के लिए स्वाभाविक हैं। जब मनोमय पुरुष शुद्ध हो जाता है, अपने आपको निम्न प्रकृति से पृथक् कर लेता है, उसकी निम्नगामी गति में रस लेना त्याग देता है, वह उच्च आदर्शों को अपने सम्मुख रखता है। कलाकार, कवि, साहित्यिक, वैज्ञानिक होना, उसकी स्वाभाविक गति हो जाती है। चिंतन, एकाग्रता, संकल्प भी मानसिक कर्म हैं। मन के अंतर्निहित गुण हैं।

यह विषय योग-साधना का है। यह सचेतनता, यह दृष्टि – हर भाग को पृथक् देखना, उसकी प्रकृति को जानना – योग-साधना से उपलब्ध होती है। अहंकार के स्थान पर आत्मा को सिंहासनारूढ़ करना बिना साधना, बिना सचेतनता के असंभव है। श्रीमाताजी कहती हैं – 'सचेतन होना ही योग है।'

अहंकार

हमें बताया गया है अहंकार और वासना के रहते मनुष्य आध्यात्मिक चेतना-स्तर से उतना ही दूर है जितना पशु नैतिकता से। क्रूरता के रहते हम आत्मा में निवास नहीं कर सकते, जैसे राक्षस वैकुण्ठ में। अहंमयी सीमित व्यक्ति-चेतना की परिधि में बंद व्यक्ति आत्मा की विशालता को न धारण कर सकते हैं न सहन। जैसे छोटे-छोटे सरोवर सूर्य-रश्मियों को। वे सूख जाते हैं। जब तक हमें आत्म-साक्षात्कार नहीं है, और न अपने सच्चे स्वरूप में स्थित हैं, तब तक यही मानकर चलना चाहिये कि हमारे अंदर अहंकार है और हमारा जीवन उसके संकल्प की चरितार्थता का स्वरूप है। अहंकार की स्वाभाविक गति हमेशा बहिर्मुखी, अज्ञानजनित एवं स्वार्थपूर्ण होती है। आत्मा के संकल्प के विपरीत होती है। किन्तु, अहंकार परिवर्तित हो सकता है। शिक्षित किया जा सकता है। उसकी चेतना में विशालता ला सकते हैं। उसके स्वभाव में से स्वार्थ एवं लोभ को, अपने आपको दूसरों से श्रेष्ठ समझने के भाव के साथ दूर कर सकते हैं। यहाँ तक कि समर्पण का भाव भी उसमें जगाया जा सकता है। अहंकार शुद्ध हो सकता है। सात्विक भावों को धारण कर सकता है। विनम्र होना सीखता है। दूसरों के लिए सर्वस्व की आहुति प्रदान करने को भी उद्यत

हो जाता है। किन्तु, हमारे अंदर अहंकार एक गौण व्यक्तित्व है, सच्चा नहीं। विजातीय तत्व है, आध्यात्मिक नहीं। हमारे अंदर अहंकार की क्रिया परिवर्तित होती रहती है। जब हमारा मनोमय पुरुष क्रियाशील होता है तब अहंकार उसके साथ एक हो जाता है। उसे अपना यंत्र बनाता है। अपनी इच्छाओं को, संकल्प को उसके द्वारा चरितार्थ करता है। और जब, प्राणमय अथवा अन्नमय पुरुष क्रियाशील होते हैं तब वह उनके साथ एक हो जाता है। केन्द्र बदलते रहना ही इसका स्वभाव है। मन, प्राण, शरीर हमें यंत्र रूप में मिलते हैं। किन्तु, देखा जाता है कि सामान्य मानव-जीवन इन्हीं के द्वारा शासित होता है। अपने अंदर जो इच्छाएँ हम देखते हैं वे इन्हीं पुरुषों से या इनके द्वारा विश्व-प्रकृति से आती हैं। अगर हम सचेतन होने का प्रयास करें, हमारे लिए यह जानना संभव हो जाता है कि अमुक इच्छा सत्ता के किस भाग में उठ रही है। कोई प्रतिक्रिया किस भाग में हो रही है। कौन-सा भाग किस गुण के प्रति उद्घाटित है। सत, रज, तम में से किसके प्रभाव में है। सजगता के पश्चात् ही हम निर्भूल पगों से जीवन-मार्गों पर अग्रसर होने में समर्थ होते हैं।

वेद रूपी सूर्य हर हृदय में विद्यमान है। अगर तेरा जीवन-स्तर उसके द्वारा प्रकाशित नहीं है तो इसे परिवर्तित कर, ऊँचा उठा। विचार का स्तर आध्यात्मिक बना। तू लाभान्वित होगा।

परिवर्तन अनिवार्य

शीघ्रता करना मनुष्यों का स्वभाव बन गया है। वे अपना मत प्रदान करने में शीघ्रता करते हैं। किंचित किसी संत, महात्मा, योगी, स्वामीजी को ज्योति का दर्शन अथवा, असीम देश में व्याप्तता का अनुभव हुआ, हम कहने लगते हैं कि वे मुक्त हो गये। साधक स्वयं भी यही विचारने लगता है। और मृत्यु के पश्चात् तो इस पर मुहर लगा दी जाती है कि अमुक साधक, अमुक स्वामी जी आवागमन के चक्र से मुक्त हो गये, उनकी मुक्ति हो गई।

ऐसी बहुत-सी महान आत्माओं को, विभूतियों को मैं जानता हूँ, उनसे मेरा परिचय है, सतत संपर्क है, जिन्हें संसार मुक्त समझता है। वे पृथ्वी पर हैं और अपने आत्म-विकास का कार्य पूर्ण करने में अपने ढंग से साधनारत हैं। हमारी आत्मा अपने विषय में उतना नहीं बोलती जितना कि हमारा मानसिक अहंकार घोषणा करता है। आत्मा सत्य में निवास करती है, उसकी घोषणा नहीं करती। वह विश्व-कर्म में परम पिता का हाथ बंटाना चाहती है। इसे त्याग कर मुक्ति के आनंद में डूबे रहना उसे नहीं सुहाता। ऐसा कोई भी संतान नहीं चाहेगी। अगर कहीं, किसी व्यक्ति में शंकराचार्य की भांति मुक्ति की प्रबल इच्छा हम देखते हैं, उसे उस दिशा में अत्यधिक प्रयत्नशील

पाते हैं, तो यह उसका मनोमय पुरुष होता है जो संस्कारों से, वातावरण से, उस युग-विशेष की प्रचलित प्रथाओं से प्रभावित होता है। यह चुनाव मनोमय पुरुष का होता है आत्मा का नहीं। आत्मा जानती है वह मुक्त है और बंधन केवल भ्रम है। वह जानती है कि सृष्टि का तथा उसकी अपनी सत्ता का मूल ब्रह्म है। मूल अस्तित्व एक है, अखंड है, अद्वितीय है और उसका अपना अस्तित्व उसी की आंशिक अभिव्यक्ति है। वह अपने कर्तव्य के प्रति सचेतन है। भागवत-आदेश-पालन को अपने जीवन का, कर्मों का स्वरूप प्रदान करती है। वह मानती है कि भव-उपवन का स्वामी उसका पिता है और पिता के कार्य में सहयोग प्रदान करना ही हर सच्ची संतान का प्रथम कर्तव्य है, सर्वोच्च आदर्श है, श्रेष्ठतम बुद्धिमत्ता है। वह पलायन का मार्ग कभी नहीं अपनाती। इसीलिए बुद्ध ने निर्वाण स्वीकार नहीं किया। वे हमारे बीच में हैं और मनुष्यों को संताप-रहित करने में, कष्टों से मुक्त करने में, उन्हें सच्चा सुख प्रदान करने में संलग्न हैं।

मानव-आत्मा में दो गुण विशेष हैं। वह स्वभाव से जोशीली है। उसे साहसिक कार्य पसंद हैं। वह नये अभियानों का प्रारंभ करने में आंतरिक संतुष्टि अनुभव करती है। ऐसे प्रदेशों में जन्म लेने का प्रयास करती है जहाँ मनुष्य अज्ञान में निवास कर रहे हैं। वे जीवन-विज्ञान की कला से अनभिज्ञ हैं। आत्म-सत्य से, चेतना से दूर हैं। धार्मिकता से, आचार की शिक्षा से वंचित हैं।

दूसरा, वह कोई नई उपलब्धि, परमात्मा की अनंत संभावनाओं में से किसी एक का अवतरण संभव बनाने में अपने आपको झोंक देती है। उसकी निष्पत्ति में संलग्न रहती है। चाहे उसके लिए उसे कितने भी जन्म लेने पड़ें। एक के पश्चात् दूसरा, उच्च चेतनाओं का अवतरण संभव बनाना, मनुष्य को सामूहिक रूप में आत्म-सत्य के प्रति उद्घाटित करना, जीवन में उसकी अभिव्यक्ति को संभव बनाना ही उसके पुरुषार्थ का स्वरूप होता है। संसार के अंतिम व्यक्ति का आत्मा की मुक्त-चेतना में निवास जब तक संभव नहीं होता वह विश्राम की बात नहीं सोचती। जब तक उसके यंत्र आत्मा में सचेतन नहीं होते, उनकी चेतना परम सत्य में नहीं उठती, वे उसमें रूपान्तरित नहीं होते – वह अपने आत्म-विकास के महान कर्म में संलग्न रहती है। विश्व-चेतना-स्तर को उपलब्ध कर उससे परे परमात्मा के साथ एकत्व लाभ करती है। उस स्तर पर वह पूर्ण विकसित हो जाती है। उसका ज्ञान असीम, दृष्टि असीम, चेतना सर्वव्यापक हो जाती है। वह संसार में भागवत यंत्र होने की योग्यता से सम्पन्न हो जाती है और भागवत संकल्प की चरितार्थता को लक्ष्य रूप में चुनती है। उसकी चरितार्थता ही हर जन्म में उसके जीवन का स्वरूप होता है।

धार्मिकता

हमारे अंदर सच्चा व्यक्ति आत्मा है। हम शरीर नहीं हैं। शरीर हमारी सत्ता का अत्यंत बाह्य, स्थूल भाग है। तब हम केसे हिन्दू या मुस्लिम या ईसाई हो सकते हैं।

इस अनुभवसिद्ध कथन में हमारी आस्था होनी चाहिये – मनुष्य अपनी मूल सत्ता में आत्मा है। आत्म-धर्म ही उसका वास्तविक धर्म है। धर्म का सही स्वरूप प्राप्त करने के लिए उसे अपनी आत्मा को पाना होगा। उसका स्वभाव धारण करना होगा। उसी के आदेशानुसार जीवन यापित करना होगा। शास्त्र की यह वाणी हमें हृदयंगम करनी होगी – जीवन में, विचार, भाव तथा कर्मों में आत्मा की अभिव्यक्ति ही मानव-धर्म है। हमें मनुष्य के वर्तमान चेतना-स्तर को पीछे छोड़ना होगा। सीमित व्यक्ति-चेतना-परिधि का अतिक्रमण करना होगा। मन तथा हृदय से संकीर्ण अहमात्मक विचारों का, स्वार्थपूर्ण भावनाओं का त्याग करना होगा। आत्मा की विशाल चेतना में निवास संभव बनाना होगा। तभी संसार में स्थायी शांति सुलभ होगी। धर्म संबंधी पारस्परिक कलह से हम ऊपर उठ पायेंगे।

अगर हम तथाकथित मानवकृत धर्मों से ऊपर उठने में समर्थ हो सकें, धर्मों के वर्तमान प्रचलित स्वरूप को पीछे छोड़ सकें, दूसरी ओर आत्म-धर्म में स्थित होकर – जो कि मूल धर्म

है और मानव मात्र के लिए एक है – समाज की व्यवस्था करें, समस्याओं को देखें, तो यह प्रसंभाव्य है कि धर्म संबंधी हमारी सारी समस्याएँ समाधान लाभ कर सकेंगी। आध्यात्मिकता में यह संभव है। आध्यात्मिक चेतना में निवास करनेवाला व्यक्ति धर्म एवं आचार का त्याग नहीं करता। वह इनका पालन करते हुए इनसे ऊपर होता है। उसकी चेतना में इनका रूप परिवर्तित होता है। वह इनका पालन इनके शुद्ध रूप में, मूल रूप में करता है, जहाँ ये अंतस्थ सत्य को चरितार्थ करती हैं। जैसे एक ओर अपनी अंतरात्मा का आदेश-पालन उसका कर्तव्य होता है वैसे ही दूसरी ओर, उसका स्वभाव धारण करना उसका धर्म होता है।

अगर हम अपने आपको आध्यात्मिक कहते हैं और समझते हैं कि संसार में भगवान का कार्य कर रहे हैं, हमारे लिए सत्य-असत्य में, धर्म-अधर्म में, पाप-पुण्य में कोई अन्तर नहीं, हम भगवान के लिए कुछ भी कर सकते हैं, तो सावधान ! हमारे लिए 'महती विनष्टि' का द्वार खुला है। रामकृष्ण ने उस व्यक्ति को, जो चरित्रहीन है, नैतिकता का पालन नहीं करता और अपने आपको आध्यात्मिक कहता है, गन्दा, घृणित, धूर्त, ढोंगी कहा है।

गायत्री मंत्र

गायत्री एक चेतना है, एक चेतन शक्ति है। गायत्री मंत्र अतिमानसिक चेतना के एक स्तर विशेष की अभिव्यक्ति है। भागवत संकल्प का सीधा प्रकटीकरण है। पराचेतना की आत्म-अभिव्यक्तियों में गायत्री शक्ति अर्थात् गायत्री मंत्र की आत्मा, उसकी प्रतिनिधि, वह सत्ता – गायत्री मंत्र जिसका मूर्त रूप है, शाब्दिक शरीर है, एक अतिमानसिक शक्ति है। मानव मन-आत्मा को सचेतन करने की शक्ति, उसमें अभीप्सा जगाने की सामर्थ्य उसकी साधारण क्षमताओं में से है। जिसका अवतरण उस हर व्यक्ति को अपनी चेतना में संभव बनाना होता है जो जीवन में, सही अर्थों में सफलता लाभ करना चाहते हैं अर्थात् पृथ्वी पर आत्मा के अवतरण के औचित्य को सिद्ध करना चाहते हैं।

दूसरी ओर गायत्री मंत्र एक प्रार्थना है, एक पुकार है, एक अभीप्सा है जो मानव आत्मा से परमात्मा की ओर उठती है। मन-प्राण-शरीर रूपी अपने करणों में तथा अपने जीवन में दिव्य परिपूर्णता लाने के लिए परमात्मा की शक्ति का, चेतना का आह्वान करती है। हम उच्च चेतना के लिए, सुबुद्धि, सुविवेक के लिए प्रार्थना करते हैं। आत्मिक चेतना में मंत्र को ग्रहण करनेवाले पूज्यपाद ऋषिवर हमें जीवन मार्गों पर सफलता

पूर्वक, तटस्थ रहते हुए चलने की, प्रगति-पथ पर अग्रसर होने की शिक्षा से लाभान्वित कर रहे हैं। जिससे कि हम अहंकार के अंधकार पूर्ण गर्तों में गिरकर जीवन का बहुमूल्य समय नष्ट न करें। उच्च बुद्धि के प्रकाश में, आत्म-चेतना के आलोक में सत्यासत्य का, उचित-अनुचित का अंतर समझने में समर्थ हो सकें। हमारे निर्णय, हमारे चुनाव, हमारे कर्म आत्म-सत्य के अनुरूप, उससे प्रभावित, उससे ओत-प्रोत रहें।

आत्म-ज्ञान का दिव्य द्वार दोनों ओर से उद्घाटित होता है। जो अंतर्निहित ज्ञान का अनावरण करे वही ज्ञानी हो जाता है। लेकिन तभी तक, जब तक उसका हृदय आवरणहीन है। जब तक मनुष्य में अहंकार है, सीमित अहंभाव है, वासना है तब तक आवरण की संभावना बनी रहती है। जब हृदय पर पर्दा दूसरी बार पड़ता है, हम पुनः दृष्टिहीन हो जाते हैं। हमें पर्दा दिखायी नहीं देता। हम अपने आपको आवरणहीन समझने की भूल करते हैं और जो भी कामनाएँ, आवेग विश्व-प्रकृति से हमारी चेतना में प्रवेश करते हैं, उन्हें अंतर्प्रेरणा समझते हैं। हमें भूलना नहीं चाहिये हृदय में महत्वाकांक्षा के उभरते ही वह पुनः आच्छादित हो जाता है।

उधारा ज्ञान

कुछ मनीषि जब हमें आत्मा की मुक्त चेतना में उठाने की बात करते हैं, हमें यह मनोभाव अंगीकार करने की सलाह देते हैं – शरीर को अपने से पृथक् समझो। पृथक् देखो। साक्षी भाव अपनाओ। मन में विचारते जाओ – यह शरीर मैं नहीं, इन इंद्रियों का, भोगों का भोक्ता मैं नहीं। मैं नित्य शुद्ध, मुक्त हूँ। अकर्ता हूँ। इस सब व्यापार से मेरा कोई संबंध नहीं।

हमारे लिए यह उधारा ज्ञान होता है। हम इसके अधिकारी नहीं होते हैं। इसे धारण करने में समर्थ नहीं होते। हमारे सामने एक ही समस्या है जो हमें प्रतिदिन तंग करती है। हम भूख अनुभव करते हैं। बिना भोजन शांति नहीं मिलती। सब साधन-प्रणाली छूट जाती है। ध्यान नहीं जमता। चित्त एकाग्र नहीं होता। भोजन के पश्चात् हम पूर्ण तृप्त अनुभव करते हैं। जब भूखे होते हैं उस समय इस विकल्प से हमारा काम नहीं चलता कि मैं शरीर नहीं हूँ। यह सोचने से समस्या समाधान प्राप्त नहीं करती कि यह भूख शरीर में है और इससे मेरा कोई संबंध नहीं। हमें भूख लगती है और हम रसोई घर की ओर या बाजारों में दौड़ पड़ते हैं। हम भूल जाते हैं कि मैं एक प्रोफेसर हूँ और संसार को शारीरिक चेतना से ऊपर उठने का पाठ पढ़ाता हूँ, समझाता हूँ कि तुम शरीर नहीं हो। इसके व्यापार

तुम्हारे नहीं। तुम्हारे भीतर नहीं। ये कष्ट, ये पीड़ा शरीर को है। हम चिल्लाते हैं भूख, भूख। दूसरा कुछ नहीं सुनना चाहते। जब हृदय-गति अवरुद्ध होने लगती है हम डाक्टर, डाक्टर पुकारते हैं। उसके सिवाय अन्य कुछ नहीं। न जानते हैं, न समझते हैं। न जानना चाहते न सुनना ही चाहते हैं।

जब संध्या कि सुहावनी वेला अपना श्यामल, कोमल आँचल फैलाती है, हमारे हाथ स्वतः रंगीन, चिकने, ललित प्याले की ओर बढ़ने लगते हैं। हम सब कुछ भूल कर कि मैं आचार्य हूँ, समाज मुझे प्रोफेसर कहता है, उस चमकते प्याले को – जो मेरे लिए संसार में सबसे अधिक आकर्षक है, मिठास से आपूर्ण, स्वर्गिक चषक के समान है – अधरों से लगा लेता हूँ।

शारीरिक चेतना से ऊपर उठना, अपने आपको शरीर से भिन्न देखना केवल विचार के द्वारा संभव नहीं। शास्त्रों में हम देखते हैं और हमारा अनुभव भी हमें यही बताता है कि शरीर, मन, इंद्रियों से पीछे हटकर, गहन एकाग्रता के द्वारा हम अपनी आन्तरिक सत्ता के साथ तादात्म्य लाभ कर सकते हैं। यह संभव है। तादात्म्य की स्थिति में हम अनुभव करते हैं, हमें स्पष्ट गोचर होता है कि मैं आत्मा हूँ और मनोमय, प्राणमय तथा अन्नमय ये तीनों पुरुष मुझसे बाहर हैं, अर्थात् पृथक् हैं। हम इन्हें क्रिया करते देखते हैं। इनके विचारों को पढ़ सकते हैं। इनमें इच्छाएँ उठती, विश्व-प्रकृति से प्रवेश करती दिखायी देती हैं।

आत्मा में स्थित व्यक्ति समस्त जीवन-व्यापार को अपने से बाहर देखता है। वही यह घोषणा कर सकता है कि मैं शरीर नहीं, इंद्रियों के व्यापारों से मेरा कोई संबंध नहीं। किन्तु, यह एक आंशिक सत्य है। हम इसे सिद्धान्त मानकर नहीं चल सकते। यह हमारी सत्ता का एक पक्ष है। अपने यंत्रों को, अपनी प्रकृति को भागवत सत्य की ओर उद्घाटित रखना, उनके द्वारा आत्मा के संकल्प को चरितार्थ करना, इसके लिए उन्हें तैयार करना मानव आत्मा का प्रथम कर्तव्य है। हर सचेतन व्यक्ति जहाँ एक ओर भागवत संकल्प की चरितार्थता को जीवन-लक्ष्य के रूप में निर्धारित करता है, वहीं दूसरी ओर, अपने यंत्रों को शिक्षित करना भी कर्तव्य रूप में निश्चित करता है। तभी वह अपने लक्ष्य में, भागवत संकल्प को पूर्णतः चरितार्थ करने में सफल हो सकता है। अपने यंत्रों को शिक्षित करना, उनमें आत्म-सत्य की ओर उद्घाटन, उनके स्वभाव में परिवर्तन लाना, उनकी निम्नगामी गति को ऊर्ध्वमुखी बनाना, उनमें समर्पण का भाव जगाना, आध्यात्मिक जीवन यापित करने के लिए अनिवार्य शर्त है। समर्पित जीवन जीने की अभीप्सा हमारी आत्मा की स्वाभाविक वृत्ति है। जब हम संस्कारों की छाप से पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं और किसी मत-विशेष से, पंथ अथवा वाद-विशेष से बंधे नहीं होते, तब और केवल तभी, हमारी आत्मा अपनी अब तक की संजोयी हुई, युगों पुरानी अभिलाषा

को हमारी चेतना के सम्मुख प्रकट करती है। हमें नई आध्यात्मिकता की ओर – जो कि जीवन तथा कर्म का त्याग नहीं करती, वरन् उसके रूपांतर में विश्वास करती है – हमें प्रेरित, उद्घाटित करती है।

कोई संस्था चाहे कितनी भी उन्नत हो, उसने अपने सम्मुख चाहे कितना भी उच्च आदर्श स्थापित किया हो। चाहे वह अपने आपको सीधी वैदिक शिक्षा से, वैदिक सिद्धान्तों से जुड़ी हुई घोषित करती हो – उसका सदस्य होने से, उसमें कर्म करने मात्र से, हम अहंकार से मुक्त नहीं होते, जो कि आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में अनिवार्य शर्त है। अहंकार से मुक्ति परमात्मा को पूर्ण रूपेण समर्पित होने से होती है। बाह्य सत्ता के स्थान पर आंतरिक सत्ता में, आत्मा में निवास करने से होती है। अंतर्प्रेरणा के द्वारा चालित होने से, एक ऐसी उच्च चेतना में निवास करने से – जहाँ सारी सत्ता प्रदीप की लौ का रूप धारण कर लेती है, हृदय कामनाओं से रहित हो जाता है – हम अहंकार से ऊपर उठ जाते हैं। हमारा अंतर् आवरणहीन हो जाता है। हम अंतस्थ देव के प्यारे होते हैं। भीतर से आत्मा हमारे ऊपर मंगल बरसाती है। उसके आशीष के साथ हम जीवन मार्गों पर अग्रसर होते हैं।

आत्म-निवेदन

निम्न प्रकृति से शासित, रजोगुण से प्रभावित, तृष्णा की ज्वाला में झुलसे जाते हुए, अहंकार के द्वारा अधिकृत, बाह्य व्यक्तित्व की, भौतिकता की ठोस दीवारों में बंद, सीमित व्यक्ति-चेतना में निवास करनेवाले, जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों की जंजीरों में जकड़े मानव प्राणी भीतर से तुझे पुकार रहे हैं। सत्यमय जीवन की, आत्मा की पूर्णता में उठने की प्यास उनमें जाग रही है। वर्तमान जीवन का स्वरूप – जिसमें असंख्य कामनाएँ हैं। सुख-भागों की इच्छाएँ हैं। प्रतिष्ठा पाने की आकांक्षा है। अन्य कुछ हैं जिनमें दूसरे धर्मों के, जातियों के ऊपर शासन करने का भाव ही विशेष रूप से देखने को मिलता है। जिससे ये स्वयं तंग हैं और जिसे बनाये रखना, इनके लिए असंभव हो रहा है। जिस लीक पर इनकी जीवन गाड़ी चल रही है उसी पर चलाते जाना, न चाहते हुए भी उसी से बंधे रहना असह्य प्रतीत हो रहा है। ये जीवन तथा कर्मों के स्वरूप में परिवर्तन लाना, उनका स्तर ऊँचा उठाना चाहते हैं। किन्तु उस दिशा में प्रथम चरण उठाने में अपने आपको असमर्थ पा रहे हैं, असफल सिद्ध हो रहे हैं। ये कृपा के पात्र हैं। ध्यान की एक विशिष्ट स्थिति में, आत्म-सचेतनता के प्रेरक क्षणों में, मेरी चेतना इनके साथ एक थी। गत रात्रि वह अपने लिए नहीं इनके

लिए ही तेरे समीप आई थी। मैं अभी भी उन पावन क्षणों को भूल नहीं पा रहा हूँ। हे करुणामय ! तेरी कृपा-दृष्टि इन्हें प्राप्त हो।

रात भर मैं इसी चिन्तन में डूबा रहा। सुबह से इसी समस्या का समाधान खोजने में संलग्न हूँ। समाधान प्राप्त नहीं। दूर, धरती के एक कोने में, अपने आपको तरे कार्य के लिए तैयार कर रहा हूँ। मानव अतिमानसिक दिव्य संपदाओं की ओर उद्घाटित हो, उन्हें ग्रहण करने में समर्थ हो यही मेरी अभिलाषा है। इसी ओर मेरा पुरुषार्थ है। संसार विशाल है। मेरा अस्तित्व अति नगण्य है। केसे इन तक अपनी वाणी पहुँचाऊँ। भीतर जलती, उमड़ती ज्वाला दिखाऊँ। जिससे कि ये समझें मैं तेरा हूँ। तेरा सेवक हूँ। मेरा जीवन तेरे लिए है। तू जानता है मैं मानवता को तेरा स्वरूप मानता हूँ। मानवता के लिए जीवन उत्सर्ग करने का मेरा यही एक मात्र अभिप्राय है।

इस सृष्टि का रूप तूने लिया है। यह तेरी आत्म-अभिव्यक्ति है। तेरे संकल्प की चरितार्थता है। इसी लिए मैं इससे युक्त हूँ। इसमें स्थित हर प्राणी को, पदार्थ को प्रेम करता हूँ। जिस व्यक्ति से मिलता हूँ तेरे लिए, तेरे द्वारा, तेरे अंदर मिलता हूँ। अन्यथा यह असंभव होता।

मैं सब तुझे निवेदित कर, तेरे चरणों में शांत-भाव स्थिर होकर बैठ गया हूँ। तेरे पथ-प्रदर्शन के लिए प्रतीक्षारत हूँ। तेरा

आदेश ही मेरे जीवन का स्वरूप होगा। इस संकल्प के साथ मैं अपना सर्वस्व तुझे सौंप रहा हूँ।

आशीर्वचन के रूप में तेरा उत्तर प्राप्त हुआ। "तेरा नाम प्रार्थियों की सूचि में अंकित कर लिया गया है। निश्चित समय पर सब किया जायेगा।"

जो आत्मा से अनुशासित है वह जानता है कि बाह्य अनुशासन की कब, कहाँ, कितनी आवश्यकता है। वह बाहर से थोपी गई दिनचर्या को, प्रक्रियाओं को उतना ही स्थान देता है जितना उचित होता है। विपश्यना आदि पद्धतियाँ बहुत कीं और कराई हैं। व्यक्तिगत पुरुषार्थ की सीमा है और वही सब कुछ नहीं होता। भागवत-कृपा की महत्ता समझना साधक की महान बुद्धिमत्ता का परिचय है। हम एक पक्ष को लेकर पूर्णता लाभ नहीं कर सकते। संसार में जो भी सार्थक संसिद्ध हुआ दोनों के मिलने से संभव हुआ। व्यक्ति का पुरुषार्थ एक ओर तथा भागवत कृपा दूसरी ओर। अगर भागवत कृपा पथ पर पग नहीं संवारती तो जहाँ हम पहुँचते हैं वहाँ अपना व्यक्तित्व, यह संसार शून्य दिखायी देता है। चहुँ ओर, सर्वत्र मायामय गोचर होता है।

चरम समाधान

संसार में मतों की कमी नहीं। सिद्धान्तों की भरमार है। मनुष्य परम सत्य की किसी एक अवस्था का साक्षात्कार करता है और उसे ही पूर्ण सत्य मानता है। समाज के सामने अपने मत को उपस्थित करता है और चाहता है कि जिस मार्ग को उसने चुना है, जिस साधना-पद्धति को अपनाया है सब उसी का अनुसरण करें। वह चाहता है कि संसार उसके सिद्धान्त को स्वीकार करे, सर्वोच्च माने। चाहे वह उनकी प्राचीनतम संस्कृति के, शास्त्रों की शिक्षा के, ऋषि-मुनियों की आत्मानुभूति के, पैगम्बरों, मसीहों की वाणी के विपरीत ही हो, उससे समस्वर न हो।

हम दो शब्दों में अपना मन्तव्य उपस्थित करेंगे। प्रथम, आज तक जितने भी मत आये या उपलब्ध हैं उनके द्वारा मनुष्य को उसकी समस्या का समाधान प्राप्त नहीं हुआ। वह जैसी थी वैसी ही रही। सामूहिक रूप में मनुष्य अज्ञान से बाहर नहीं आया। आत्मा के एकत्व में उठना उसके लिए संभव नहीं हुआ। वह पृथकत्व की चेतना में निवास कर रहा है। पदार्थों का अन्तर्निहित सत्य न देख सकता है, न उससे व्यवहार कर सकता है। वह मानता है उसके अन्दर आत्मा है। किन्तु, उसकी चेतना को वह अपने जीवन में, कर्मों में प्रवाहित करने में

असमर्थ है। वह मानता है कि सृष्टि का मूल, इसका निर्माणकर्ता एक अद्वितीय दिव्य पुरुष है। जो इसके कण-कण में विराजमान है। साथ ही, इसे अपने अन्दर धारण किये गन्तव्य की ओर ले जा रहा है। गन्तव्य भी स्वयं वही है। वह पुरुष चाहता है कि जिस मूल दिव्यता ने सृष्टि में अदिव्य पदार्थों का रूप ग्रहण किया है, वह पुनः अपनी मौलिक दिव्यता में रूपान्तरित हो। किन्तु, उसके संकल्प को मनुष्य जीवन में चरितार्थ नहीं कर रहा है। न उसका संबंध आत्मा से है न परमात्मा के साथ, न वह उनकी उपस्थिति अपने अन्दर अनुभव कर रहा है न दूसरों में। द्वितीय, उसे बताया गया है कि पदार्थों के स्वभाव में उनके मूल स्वभाव की अभिव्यक्ति सृष्टि का लक्ष्य है। यही सृष्टि के पीछे रहस्य है। यही इसमें प्रयोजन है। किन्तु अभी भी आत्मा का दिव्य स्वभाव अपने अंदर धारण करने में वह समर्थ नहीं है और न असत्य के स्थान पर आत्म-सत्य में, अज्ञान के स्थान पर आत्म-ज्ञान में उठ पाया है। आज भी जीवन का स्तर ऊँचा उठाना, आध्यात्मिक चेतना में आरोहण संभव बनाना उसकी क्षमता से बाहर की वस्तु है।

आज एक नई चेतना, अतिमानसिक चेतना संसार में उपलब्ध है, उसका अवतरण संभव हुआ है, जो मनुष्य को, उसकी सम्पूर्ण सत्ता को आत्मा के सत्य के साथ, आध्यात्मिक चेतना के साथ संयुक्त करने में समर्थ है। जिसमें उठकर हमें

सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता है। हम भागवत संकल्प के प्रति सचेतन होते हैं। उसकी चरितार्थता को कर्मों का स्वरूप प्रदान करते हैं। जिसे प्राप्त कर मानव सब भ्रांतियों से बाहर आ जाता है, उसकी चेतना सीमाओं से ऊपर उठ जाती है। हमें चाहिये कि इस तथ्य के प्रति सचेतन हों और उन विधियों को सीखें, उनका अनुसंधान करें जिनके द्वारा हम पृथ्वी पर अवतरित अतिमानसिक चेतना को अपने व्यवहार की वस्तु बना सकें, उसकी सहायता से संसार का वातावरण अज्ञान-अंधकार से मुक्त करने में समर्थ हों। उसकी दिव्यता का प्रवाह अपने विचारों में, कर्मों में संभव बनायें। वर्तमान जीवन-स्तर के परे भी स्तर हैं, प्राप्त वस्तुओं से परे भी उनसे ऊँची, उनसे महान वस्तुएँ उपलब्ध हो सकती हैं, मनुष्य अपनी मानसिक चेतना का अतिक्रमण कर सकता है, एक दिव्य, विशाल, अनन्त चेतना को अधिकृत कर उसे अपने व्यवहार की वस्तु बना सकता है, इस ओर ध्यान दें, इसमें विश्वास उत्पन्न करें।

अतिमानसिक चेतना मनुष्य की आन्तरिक सत्ता के साथ उसकी बाह्य सत्ता का भी रूपान्तर चाहती है। उसमें परम सत्य के प्रति उद्घाटन देखना चाहती है। साथ ही, वह चाहती है मनुष्य आत्म-विकास को लक्ष्य रूप में चुनें, मानसिक चेतना का अतिक्रमण करें। वे इतने शुद्ध, इतने निरहंकारी हों कि उच्च चेतनाओं को ग्रहण कर सकें। जिससे कि पृथ्वी पर भागवत संकल्प की सीधी चरितार्थता संभव हो सके। पदार्थों का

अन्तर्निहित सत्य उनकी बाह्य सत्ता में, उनके स्वभाव में प्रवाहित हो।

हम देख रहे हैं कि भागवत संकल्प इसी दिशा में कार्य कर रहा है। इसी की प्रेरणा मानव-आत्मा को प्रदान की जा रही है। संसार में भगवान का यंत्र बनने की अभीप्सा आज़ उन सब व्यक्तियों में उठ रही है जिनमें आत्मा सचेतन है। वे सीमित व्यक्ति-चेतना की परिधि का अतिक्रमण करना चाहते हैं। जीवन अपने लिए नहीं, संसार के लिए, मानव-जाति का स्तर ऊँचा उठाने के लिए, आत्मा की मुक्त चेतना में उसका आरोहण संभव बनाने के लिए यापित करना चाहते हैं। व्यक्तिगत स्तर पर मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण आदि की इच्छाएँ उन्हें स्पर्श नहीं कर पा रही हैं।

आज के युग की यही मांग है। मनुष्य सचेतन बने। उसकी सत्ता का हर भाग ऊर्ध्व चेतनाओं की ओर उद्घाटित हो। अतिमानस की ज्योति में अपना रूपान्तर संभव बनाये। मनुष्य की सम्पूर्ण सत्ता का रूपान्तर, आत्मा की दिव्यता में उसका दिव्यीकरण अब केवल एक संभावना ही नहीं है। हम दृढ़ निश्चय के साथ कह सकते हैं कि मनुष्य की सम्पूर्ण सत्ता को, उसके निम्नतम भाग शरीर को भी आत्मा की दिव्यता में रूपान्तरित करना अतिमानस की सहज क्षमता है।

– २ –

एक ओर, संसार में हाहाकार मचा है। मनुष्य अज्ञान की शक्तियों के द्वारा भीतर से संतप्त किये जा रहे हैं। आसुरिक शक्तियाँ उन्हें पैशाचिक क्रूर कर्मों में प्रवृत्त कर रही हैं। प्रायः ही धरती का एक न एक कोना रक्त-रंजित होता रहता है। नारकीय ढंग से असहाय, सरल, निर्दोष झुंड के झुंड मनुष्यों को – चाहे शिशु हो, माता हो, वृद्ध हो, विद्यार्थी हो – अग्नि में फेंक दिया जाता है। देखते-देखते निर्दयता सीमा लांघती है। अत्याचार दावानल का रूप धारण करता है। अधर्म, अन्याय मानव-हृदय पर छा जाते हैं। जीवित शरीर जला दिये जाते हैं। त्राहिमाम्-त्राहिमाम् की आवाज से दिशायें गूंज उठती हैं।

दूसरी ओर, हम देखते हैं अभी भी कुछ सत्य के अन्वेषक व्यक्तिगत शांति के लिए, मुक्ति मोक्ष निर्वाण के लिए प्रयासरत हैं। वे या तो अपना एक पृथक् आश्रम निर्माण कर लेते हैं या जंगलों में जाते हैं अथवा पर्वतों की शरण ग्रहण करते हैं। ध्यान ही उनकी मुख्य साधना है। आन्तरिक ध्वनि श्रवण करने में, शांति या नीरवता का भोग करने में अधिक से अधिक समय व्यतीत करना लक्ष्य रूप में चुनते हैं। सत्ता की गहराई में – जहाँ हम संसार से, कर्तव्य-पालन से दूर हो जाते हैं – आन्तरिक सुख को ही सर्वाधिक मूल्यवान वस्तु समझते, उसे

ही सर्वोच्च महत्व प्रदान करते हैं। अपने भावों में हम एक ऐसी मानसिकता के द्वारा अधिकृत हो जाते हैं जहाँ दूसरों की चिन्ता नहीं करते, उनके कल्याण की भावना से दूर चले जाते हैं। उनके लिए हमारे पास समय नहीं होता। उनके दुख-कष्टों को अपना नहीं मानते। उनका अज्ञान में निवास हमें कचोटता नहीं। हम उनकी ओर से नयन मूंद लेते हैं, और जहाँ हमें सुख मिलता है, व्यस्त हो जाते हैं। केवल अपनी ओर देखते हैं। व्यक्तिगत सुख-शांति एवं आनंद में मग्न रहना हमारे लिए सब कुछ होता है। समाज का मुख बंद करने के लिए हम कुछ शास्त्रीय तर्क खोज लेते हैं। अपने मत को यथार्थ जताने के लिए, किसी शास्त्र की, किसी प्रबुद्ध व्यक्ति की वाणी का कोई एक वाक्य ले लेते हैं जो हमारे सिद्धान्त की पुष्टि करता हो – चाहे वह हमारी प्राचीनतम संस्कृति तथा शास्त्रों के विरुद्ध ही हो – और उसे आधार बनाकर अपने नये प्रदीप के प्रकाश को संसार के सम्मुख रखते हैं। दूर हृदय की गहराई में हम जानते हैं कि हम सही नहीं हैं, हमारा आचरण आत्म-सत्य के, शास्त्रोक्त मत के विपरीत है। फिर भी अज्ञानवश, अहंकारवश, वासनावश हम वही करते हैं। हम उसे करते हैं, क्योंकि हम उससे बाहर नहीं आ सकते, उसे त्याग नहीं सकते। यह हमारी सामर्थ्य के बाहर की वस्तु बन जाता है। एक निश्चित दूरी तय करने के

पश्चात् प्रायः यह हमारे हाथ में नहीं रहता कि जब चाहें पथ का त्याग कर सकें।

एक दिव्य पुरुष जो संसार का, हर प्राणी का साक्ष्य कर रहा है, भीतर से हमें पूछ रहा है। "हे मानव ! क्या ये ही वे कर्म नहीं हैं जिनके द्वारा अहंकार तेरी सत्ता में अपनी जड़ें गहरी जमा लेता है, तू स्वार्थ में अंधा हो जाता है, जीवन अपने लिए जीता है ! जीवन के इस स्तर पर, अहमात्मक सीमित-व्यक्ति-चेतना पर आधारित इस भाव में क्या तू अपनी सत्ता एवं जगत सत्ता के सत्य से दूर नहीं हो जाता ! क्या 'मम आत्मा सर्वभूतात्मा' रूपी मन्त्र तुझे यही समझा रहा है ! 'वसुधैव कुटुम्बकम' की परिभाषा, उसका आन्तरिक भाव यही है ! वत्स ! सचेतन बन। अधिक से अधिक सचेतन। विश्व-पुरुष के चेतना-स्तर को अधिकृत कर। वही तेरी सत्ता का सत्य है। सत्य में निवास संभव बना। तेरा मंगल होगा, तू सुखी होगा।

"हे मानव ! आत्मा की विशालता में जीना सीख ! पृथ्वी पर तेरे जीवन का आधार वही हो। क्षुद्र व्यक्तित्व की परिधि के अंदर बंद होना मनुष्यता नहीं। केवल अपने लिए जीना मनुष्यता का निम्नतम स्तर है। सीमित चेतना अहंमयी होती है। आत्मा की विशालता को धारण करना उसके लिए संभव नहीं होता। स्वार्थपूर्ण जीवन को कारा समझ। स्वार्थ-भाव को दलदल। इस कारा का एक भी द्वार ज्योतिर्मय चेतना-स्तर पर

अथवा विशाल क्षितिज की ओर नहीं खुलता; ऊपर असीम आकाश गोचर हो, ऐसा वातायन उसमें नहीं है। वातावरण को सरस, सुखद, सुवासित बनानेवाले, बलिदान की भावना से भरे पवन के लिए प्रवेश-निषेध रहता है। ऐसे प्रवाह को, जन्म-मरण के मध्य प्रवाहित सिलसिले को, जो एक प्रपंच से अधिक कुछ नहीं – जहाँ हमारी आत्मा घुटन अनुभव करती है – क्या हम मानव-जीवन की संज्ञा प्रदान कर सकते हैं !"

जब एक सचेतन आत्मा जीवन का ऐसा स्वरूप देखती है, वह व्यथा अनुभव करती है। हे मानव ! वह आत्मा तू है, तेरे भीतर है। उसका आर्तनाद सुन। तेरे अन्दर विवेक जागेगा। अनहद नाद नहीं अपनी आत्मा का आर्तनाद सुन। तेरा कल्याण होगा। इससे रंच मात्र भी निम्न स्तर का सत्य, मूल्य में किंचित मात्र भी अल्प कोई पदार्थ, कोई लक्ष्य तेरी आत्मा को स्थायी सन्तुष्टि प्रदान नहीं कर सकता। अतिमानसिक चिन्तन में उठ, गहन मनन में डूबना सीख। तुझे सूर्यालोकित पथ प्राप्त होगा।

नया क्षितिज अपनी नई ज्योति तथा चेतना को विकीर्ण करता हुआ विस्तार को प्राप्त हो रहा है। इस स्वर्णिम क्षण में हे मानव ! जाग ! अंतश्चक्षु खोल ! तू देखेगा कि सृष्टिकर्ता परमात्मा तुझे समाधि की शांति में, एक निष्क्रिय नीरवता में डूबे हुए देखना नहीं चाहते। वरन्, एक सुयोग्य पुत्र की भांति

पिता के कर्म में हाथ बंटाते हुए देखना चाहते हैं। इस भव-उपवन का स्वामी, इसका माली एक दिव्य पुरुष है। उसे शास्त्र परम पिता कहकर भी संबोधित करते हैं। हम सब उसकी संतान हैं। और एक सच्ची संतान के लिए सदैव करणीय है कि वह अपने पिता के कर्म में सहयोग प्रदान करे। हमें समझना है कि सारी सृष्टि परमात्मा का एक कर्म है। जिसे वे सचेतनता के साथ पूर्ण कर रहे हैं। पदार्थों में छिपी दिव्यता का ऊपर आना, उसमें उनका रूपान्तरण ही इस महान कर्म की – जिसे 'प्रभु का आत्म-यज्ञ' कहकर हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि अपनी वाणी धन्य करते थे – सम्पन्नता होगी। यज्ञ-कर्म का दिव्य फल होगा।

हम श्रुतियों के द्वारा, उन्हें सोपान बना कर जीवन का चरम साफल्य संसिद्ध कर सकते हैं। एक ओर अपनी अंतस्थ आत्मा में तथा दूसरी ओर परम सत्ता में – जो कि एक अखंड मूल अस्तित्व है – अपना निवास संभव बना सकते हैं। उस अजन्मा, अविनाशी सनातन पुरुष के साथ तादात्म्य लाभ कर सकते हैं जिसका यह सब विस्तार है। जिसकी प्राप्ति के पश्चात् मानव आत्मा सब सीमाओं से, सब प्रकार के बंधनों से मुक्त हो जाती है।

आत्मा की संतुष्टि

हमारी संतुष्टि और हमारी आत्मा की संतुष्टि दो भिन्न वस्तुएँ हैं। इनका स्तर भी भिन्न है। हमारी संतुष्टि वह होती है जो हमें मानसिक अहंकार अथवा इंद्रियों की इच्छाओं की पूर्ति के पश्चात् प्राप्त होती है। यह बाह्य यांत्रिक सत्ता की, हमारे गौण व्यक्तित्व की मांग होती है। जबकि दूसरी आंतरिक है, दिव्य है। हमें चाहिये उसकी पूर्ति के लिए यदि अनिवार्य हो, सर्वस्व की आहुति प्रदान करें।

अगर हम किसी संस्था के, संप्रदाय के, समाज के सदस्य हैं और उसके लिए पूर्ण सच्चाई के साथ कार्य कर रहे हैं – भले ही यह एक उत्तम कर्म है – किन्तु फिर भी हमारे भीतर आत्मा इतने मात्र से संतुष्ट नहीं होती। वह इससे अधिक कुछ और चाहती है। वह हमें आंतरिक स्तर पर, आत्मा में सचेतन देखने की अभिलाषी है। योगयुक्त रहते हुए कर्म करते देखना चाहती है। हमारे कर्मों के पीछे निष्कामता का भाव, समर्पण का भाव देखना चाहती है। वह हमारे द्वारा, हमारे अहंकार अथवा मन-बुद्धि के द्वारा चुने हुए, उनके द्वारा निर्णीत कर्म करते देख कर संतुष्ट नहीं है। वह तभी संतुष्टि अनुभव करती है जब हम भागवत आदेश का पालन जीवन-लक्ष्य के रूप में चुनते हैं। और वह हमें पूर्ण मनोभाव के साथ उसमें डूबा हुआ देखती है।

उत्थान संभव बनायें

देख रहा हूँ मनुष्य एक ओर अत्यधिक पीड़ित हैं, संतप्त हैं। उनमें तृष्णा की ज्वाला धधक रही है। ईर्षा-द्वेष के भाव उमड़ रहे हैं। धर्मों को, धर्म-शास्त्रों को लेकर पारस्परिक कलह में डूब रहे हैं। साथ ही दूसरी ओर अहंकार के द्वारा अधिकृत हैं, उनकी चेतना सुख-भोगों में अधिक से अधिक लिप्त है। कहाँ है भूल ! भूल अवश्य है। हमें खोजनी होगी। शायद हमारे चुनाव में भूल हुई है। हमने अंतस्थ देव के द्वारा निर्दिष्ट पथ का अनुसरण नहीं किया। आचार्यों, भगवानों, पैगम्बरों के प्रभाव में आये। उनके द्वारा बताये मार्ग को अपनाया। हम वेदों की ओर नहीं मुड़े। अपने पूर्वजों की, ऋषि-मुनियों की शिक्षा में समाधान नहीं खोजा। हमने आत्मा की, परमात्मा की शरण ग्रहण नहीं की। गुरु-चरणों से लिपटने की, संतों की, संन्यासियों की शिक्षा को शिरोधार्य करने की मानसिक रुचि को अंतरात्मा की अभीप्सा समझा।

हे मानव ! भीतर झांक । प्रभु चरणों में बैठना सीख। तुझे कर्तव्य का ज्ञान होगा। तेरे सम्मुख पथ खुलेगा। तुझे निर्भ्रांत पगों से जीवन-मार्गों पर चलने की शक्ति, क्षमता प्रदान की जायेगी। तू समझेगा कि तुझे हर वस्तु के लिए सृष्टिकर्ता परमेश्वर की ओर मुड़ना चाहिये। उनके पथ-प्रदर्शन में

जीवन-मार्गों पर अग्रसर होना चाहिये। भागवत कृपा के अस्तित्व को स्वीकार करना चाहिये। तभी तेरी सहायता होगी। तुझे वर्तमान अज्ञानजनित दयनीय दशा से ऊपर उठाया जायेगा। तेरी ओर से अभीप्सा का होना अनिवार्य है। पुरुषार्थ कर। सच्चे पुरुषार्थी के लिए, जो आत्मा के प्रभाव से युक्त होकर कर्म करते हैं सब सुलभ होता है। सच्चे पुरुषार्थी को सृष्टिकर्ता परमात्मा प्रेम करते हैं। उसके सहायक बनते हैं। जो पुकारते हैं उनके जीवन में परमेश्वर आते हैं। उनका भार उठाते हैं। श्रेय मार्ग पर उनके पग संवारते हैं।

वैदिक ज्ञान को छोड़ कर जो भी ज्ञान हमें प्रदान किया गया सब अपूर्ण है, एकपक्षीय है। संभव है जब वह प्रदान किया गया तब उसकी उपयोगिता, अनिवार्यता व्यावहारिक हो। इस रूप में जिनके द्वारा वह दिया गया, उन पूज्य आचार्यों के, भगवानों के, पैगम्बर और मसीहों के हम ऋणी हैं। किन्तु, हम कहेंगे कि वह शिक्षा, वे सिद्धान्त सर्वकालीन नहीं थे। उनके द्वारा हम अपनी व्यक्तिगत, समाजगत तथा जातिगत समस्याओं का समाधान प्राप्त करने में असमर्थ रहे। वे आज भी बनी हैं। हमें नया सिद्धान्त, नया दर्शन, चिन्तन की नई दिशा खोजनी होगी। जगत एवं जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण अपनाना होगा। जो कि वेदों के ज्ञान पर, वैदिक ऋषियों की शिक्षा पर आधारित होना चाहिये।

हमारी अभीप्सा

हम जीवन के वर्तमान स्तर से ऊपर उठना चाहते हैं – किन्तु, कामनायें एवं अहंकार एक ओर, वासनाएँ एवं संस्कार दूसरी ओर, इनके प्रभाव के कारण दिव्य अग्नि स्फुलिंग, मानव आत्मा ऊपर उठने में असमर्थ अनुभव कर रही है। वह हर संभव प्रयास करती है कि उसकी अभीप्सा सीधी ऊपर उठे। तीव्र रूप धारण करे। किन्तु, विश्व-प्रकृति की इन बाधाओं पर विजय पाना उसके लिए संभव प्रतीत नहीं हो रहा है।

हम आत्म-दर्शन चाहते हैं – इसलिए कि हम अपनी सत्ता के सत्य में निवास कर सकें। अपने सच्चे स्वरूप का हमें बोध हो। शरीर, मन, इंद्रियाँ आदि को अपना आप समझने की भ्रांति से बाहर आयें। निम्न प्रकृति से, उसकी मांगों से, अहंकार की चालों से ऊपर उठें। आत्म-सत्य में जागें। उसके द्वारा प्रेरित-चालित हों। उसे ही जीवन में, कर्मों में चरितार्थ करें।

हम भगवान से संबंध चाहते हैं। वे जगत पिता हैं। उन्होंने हमारी रचना की है। हमारे अस्तित्व के वे मूल कारण हैं। हमें प्रेम करते हैं। हमारा मंगल चाहते हैं। हमें उनका मार्गदर्शन चाहिये। उनकी सहायता, उनकी कृपा चाहिये। हम नहीं जानते कि हमारा आत्म-कल्याण किस वस्तु में है। किस पथ का चुनाव हमें करना चाहिये। अतः हम उनकी ओर मुड़ना चाहते

हैं। अपना हाथ उनके दिव्य करों में थमा देना चाहते हैं। हम महापुरूषों के कथन के साथ एकमत होकर कहेंगे कि यह सब हम मन-बुद्धि के द्वारा, विचार-पूर्वक ही नहीं कर रहे हैं, यह अहंकार का लाभ-हानि की गणना के द्वारा किया हुआ चुनाव नहीं है ! हम देख रहे हैं कि यह हमारा आंतरिक स्वभाव है। हमारी सत्ता का गभीरतम सत्य है। हम अपने हृदय में उनकी ओर एक खिंचाव अनुभव करते हैं। जिसकी उपेक्षा करना हमारी सामर्थ्य के बाहर है। हम उसकी अवहेलना नहीं कर सकते। यह हमारी सत्ता का अपने मूल की ओर स्वतः प्रवाह है।

हम एक ऐसी चेतना में उठना चाहते हैं – जो पूर्णतः शुद्ध हो। जिसमें किसी प्रकार का मिश्रण न हो। जो पूर्ण सत्यमय हो। अपनी विशालता में संपूर्ण सृष्टि को, पूरी मानवता को धारण करती हो। जिस चेतना में उठ कर मनुष्य मन की कामनाओं के द्वारा, इंद्रियों के आवेगों के द्वारा, अहंकार की मांगों के द्वारा चालित नहीं होता। वरन्, अपनी आत्मा में निवास करता हुआ परमेश्वर के इंगित के अनुसार जीवन-मार्गों पर अग्रसर होता है। उनके संकल्प को जीवन तथ कर्मों में अभिव्यक्त करना लक्ष्य रूप में निर्धारित करता है।

———

धरा-नियति — एक स्वर्णिम काल

संसार में अज्ञानमय, अदिव्य, मिथ्यात्व से पूर्ण जीवन का स्थान दिव्य जीवन, आत्मा में सचेतन जीवन ग्रहण करने जा रहा है। यह अतिमानस का प्रभाव है। अतिमानस सत्य-चेतना है। अतिमानस संसार में अवतरित हो चुका है। मनुष्य के जीवन में, चेतना में उत्थान लाना, मन, शरीर, इंद्रियाँ रूपी उसकी बाह्य सत्ता को भी आत्मा की दिव्यता में रूपांतरित करना अतिमानस की स्वाभाविक क्षमता है। उसके कार्य की गति धीमी है। मानव-चेतना पर उसका दबाव कोमल है। मनुष्य को उच्च्च चेतनाओं की ओर उद्‌घाटित होने के लिए प्रेरित कर रहा है। जैसे-जैसे हम अतिमानस की ओर उद्‌घाटित होते जायेंगे वह हमारी चेतना में अधिक तीव्रता के साथ कार्य करना प्रारंभ करेगा। मनुष्य सामूहिक रूप में मानसिक चेतना का अतिक्रमण करने में समर्थ होगा। आत्मा की विशालता में, उसकी मुक्त अवस्था में निवास करते हुए जीवन-मार्गों पर अग्रसर होना सीखेगा। हम विकास-क्रम में एक स्तर ऊँचे उठेंगे। अतिमानसिक ज्योति एवं चेतना को धारण करेंगे। उसके द्वारा रूपांतरित होंगे। रूपान्तरित व्यक्ति को श्रीअरविन्द ने अतिमानव कहा है। अतिमानव मनुष्य से श्रेष्ठ एक दिव्य मानव होगा। अतिमानव जाति मानव जाति में से ही विकसित होगी। यह

सृष्टि-विकास-क्रम का अगला अवश्यंभावी प्रकरण है। शीघ्र ही मनुष्य देखेगा कि उसकी चेतना में एक दिव्य ज्योति प्रवेश कर रही है। उसके विचार परिवर्तित हो रहे हैं। वह बदल रहा है। दिव्य तेज के द्वारा अधिकृत होता जा रहा है। विचारों में, भावों में उच्चता झलक रही है। उसका हृदय अब तक की चली आ रही संकीर्णताओं को तज कर विश्व पुरुष की सीमाहीन विशालता की ओर उद्घाटित हो रहा है। उसने दूसरी जातियों को, धर्मों को सम्मान की दृष्टि से देखना प्रारंभ कर दिया है। अवश्य वह उनमें संशोधन की मांग करेगा। इस विषय में वह पूर्णतः निष्पक्ष है और अपने धर्म में से भी रूढ़िगत परम्पराओं को पीछे छोड़ कर धर्म के सही स्वरूप में – जो कि आध्यात्मिक चेतना की चरितार्थता है – उठना चाहेगा। वह दूसरों के दुख, उनकी समस्यां अपनी समझेगा। उनके सुख में सुखी होगा। वह अपनी इस धारणा में सुस्पष्ट होगा कि संसार में जीवन का मूल एक है। यहाँ चेतना एक है। मानव मात्र का उद्गम, उसका गंतव्य एक है। हम सब एक धरित्री माता की पावन गोद के शिशु हैं। एक शाश्वत दिव्य वितान के साये में पल रहे हैं।

जीवन में वही घटित होता है जो हमारे विकास की वर्तमान अवस्था के लिए सर्वोत्तम है। जिसके द्वारा हम कम से कम समय में अधिक से अधिक लाभान्वित हो सकें।

शंका-सामाधान (पत्र)

शंकराचार्य ने जगत को मिथ्या कहा है। माया की रचना माना है। जबकि हमारे शास्त्र सृष्टि को परमात्मा की रचना, उनकी आत्म-अभिव्यक्ति कहते हैं। इसके कण-कण में ब्रह्म दर्शन करते हैं। वे जहाँ एक ओर परमार्थ तत्व को पदार्थों का मूल सत्य मानते हैं, वहीं दूसरी ओर, जगत को अभिव्यक्ति-रूप सत्य मानते हैं।

जब शंकर यह कहते हैं कि जगत मिथ्या है, माया है, माया की रचना है, तब उनका कथन एक विशिष्ट दृष्टिकोण की चरितार्थता है। जिस स्तर विशेष पर ऐसा दिखायी देता है, जिस स्तर की यह अनुभूति है, चेतना का वह स्तर परम अस्तित्व के असंख्य चेतना स्तरों में से एक है। यह स्तर वह नहीं है जहाँ हमें पदार्थों की समग्रता की अनुभूति होती है। एक अखंड मूल अस्तित्व का बोध होता है। हमारा तादात्म्य परम पुरुष से होता है – जो कि एक है, अद्वितीय है, जिसका यह सब आत्म-विस्तार है, आत्म-अभिव्यक्ति है। वरन्, वह स्तर है जहाँ मूल अस्तित्व अव्यक्त है। यह उसकी निष्क्रिय, निर्गुण अवस्था है। यह अव्यक्त ब्रह्म है। जिसमें यह जगत, ये पदार्थ, ये प्राणी मिथ्या, छायावत दिखायी देते हैं। वहाँ सब सारहीन, खोखाला, पदार्थों का निरर्थक-सा प्रवाह प्रतीत होता है, जिसका न आदि है न अंत।

जिसके विषय में कुछ भी कहना कठिन है कि यह कहाँ से आ रहा है, कहाँ जा रहा है। कब से प्रवाहित है। कब तक रहेगा। किन्तु, यह हमारे अनुभव का, आध्यात्मिक अनुभूति का एक पक्ष है। आंशिक सत्य पर आधारित अनुभव है, चरम अनुभूति नहीं।

यही सब कुछ नहीं है। वैदिक ऋषियों का अनुभवसिद्ध कथन है कि आत्मा की निष्क्रिय अवस्था चरम सत्य नहीं है। परम पुरुष, परमात्मा इतने मात्र नहीं हैं। उनकी आत्म-अभिव्यक्ति के स्तर, परम अस्तित्व की अवस्थाएँ अन्य भी हैं। जो इससे उच्च, अधिक दिव्य, परम सत्य के अधिक समीप हैं। जिनमें परम पुरुष अपनी सत्ता की पूर्ण अभिव्यक्ति के रूप में, पूर्ण सत् चित् आनंदमय स्थिति को धारण किये अभिव्यक्त हैं। उदाहरणार्थ, व्यक्त ब्रह्म में, आत्मा की सगुण, सक्रिय अवस्था में जगत भिन्न दिखायी देता है। यहाँ सब ब्रह्म दिखायी देता है। पदार्थ मात्र में, प्राणी मात्र में ब्रह्म दर्शन होता है। सर्वत्र भागवत उपस्थिति अनुभव होती है। जगत अपने पदार्थों के साथ उसमें डूबा गोचर होता है। सृष्टि-रचना का रहस्य हमारे सम्मुख उद्घाटित होता है। केसे वह एक, अद्वितीय, अखंड, अविभाज्य सत्, अविभक्त रहते हुए, असंख्य जीवात्माओं के रूप में विभक्त होता है, केसे वह चेतन पुरुष जगत का, जड़ पदार्थों का रूप ग्रहण करता है, इसे अपने अंदर धारण किये इसके कण-कण में विराजमान है। ये सब अनुभूतियाँ

पृथक्-पृथक् प्रतीत होते हुए भी एक ही परम सत्य की अभिव्यक्ति है और जब जैसा उचित समझा जाता है, हमारे आत्म-विकास के लिए आवश्यक होता है, अथवा हमारा अन्तरात्मा अभीप्सा करता है, हमें प्रदान की जाती हैं। किन्तु, सक्रिय आत्मा की अनुभूति अथवा परम सत्ता के साथ तादात्म्य, जिसका कि यह सब विस्तार है, जिसके सर्वशक्तिमान संकल्प की यह अनंत चरितार्थता है, हम अपनी तपस्या के बल पर प्राप्त नहीं कर सकते। यह तो तभी संभव है यदि हम भागवत कृपा की ओर उद्‌घाटित हों। संपूर्ण सत्ता में समर्पित होकर परमेश्वर के इंगित पर चलें। पग़-पग पर उनके पथ-प्रदर्शन के लिए प्रार्थना करना हमारा स्वभाव हो। दूसरे शब्दों में इस महान दिव्य आंतरिक स्थिति का वर्णन हम इस प्रकार करेंगे – अगर हम अपनी आत्मा के प्रभाव में रहें, उसे सम्मुख रखते हुए साधन-मार्ग पर अग्रसर हों, सब निर्णय, सब चुनाव उसके कर-कमलों में छोड़ दें – जब हम निश्शेष भाव से समर्पित हो जाते हैं और संस्कारों से ऊपर उठ कर आत्मा को जीवन-स्वामी के रूप में चुनते हैं, उसकी प्रेरणा के अनुसार चलने के अभ्यासी हो जाते हैं, जब परमेश्वर को पिता मान कर उसकी संतान होने का भाव हमारे हृदय में उदित होता है, दूसरी ओर, परा चेतना को हम जगत जननी के रूप में अनुभव करते हैं और उसकी गोद के शिशु बनने की प्यास हमारे

रोम-रोम में जागती है – जिसके व्यावहारिक रूप को रामकृष्ण ने व्याकुलता कहा है – जब यह व्याकुलता हमारा गहनतम स्वभाव बन जाती है हम स्वीकार कर लिए जाते हैं। तब हमें वह सब तो प्रदान किया ही जाता है जिसकी अभीप्सा हमारे हृदय में थी, साथ ही, वह सब भी, जिसकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते थे। हमारी आत्मा हमारे लिए अलभ्य अनुभूतियों का द्वार खोलने के लिए, उच्चतम ऊँचाइयों पर हमारा निवास संभव बनाने के लिए परमेश्वर को पुकारती है। अनन्त दिव्य संभावनाओं का भंडार हमारे सम्मुख होता है। सृष्टि-रचना के रहस्य उद्घाटित होते हैं। हमें पदार्थों को उनकी समग्रता में देखने की अतिमानसिक दृष्टि प्रदान की जाती है। आंतरिक सत्ता के समान ही हम अपनी बाह्य, यांत्रिक सत्ता में भी दिव्यता का प्रवाह संभव बनाने में समर्थ होते हैं। परमेश्वर की आत्म-अभिव्यक्ति रूप सृष्टि को, उनकी इस दिव्य अनुपम रहस्यमयी लीला को – जो कि हमें आपाततः मिथ्या, क्षण-भंगुर अदिव्य भासित होती है – जब अतिमानसिक दृष्टि से देखते हैं तो मूल अस्तित्व संबंधी तथा जगत संबंधी अब तक की चली आ रही हमारी सब धारणाएँ परिवर्तित हो जाती हैं। हमारा बोध असीम हो जाता है। केसे वह दिव्य परम सत् अदिव्य पदार्थों का रूप लेता है ! केसे ज्ञान अज्ञान बना, आनंद ने दुख का मुखौटा पहना, केसे परमात्मा अकर्ता रहते हुए संपूर्ण सृष्टि में

क्रियाशील है ! हर गति, हर क्रिया के पीछे – चाहे वह हमारी दृष्टि में शुभ हो या अशुभ, सुन्दर हो या कुरूप, दैवी हो या आसुरी – उसी का दिव्य संकल्प कार्यरत है ! केसे मानव बुद्धि को यहाँ सब मूल सत्य के विपरीत भासता है ! अगर हम कहें, यह उसकी लीला है, तो उस परम परिपूर्ण आनंदमय अतिचेतन दिव्य पुरुष को इसकी क्या आवश्यकता थी ! इत्यादि शंकाएँ निर्मूल हो जाती हैं।

मनुष्य की समस्या यही है कि मानसिक चेतना का अतिक्रमण करना उसके लिए स्वाभाविक नहीं है। किन्तु हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि अब पृथ्वी पर अतिमानस का अवतरण संभव हो चुका है – वह मनुष्य को अपूर्व क्षमता प्रदान करेगा। जिसकी सहायता से उसके लिए न केवल मानसिक स्तर पर अपनी सीमाएँ अतिक्रमण करना स्वाभाविक होगा, वरन्, उसकी शारीरिक चेतना भी अपनी सीमाएँ अतिक्रमण करेगी। उसका शरीर अतिमानसिक ज्योति में रूपांतरित होगा। फलस्वरूप जरा, व्याधि, मृत्यु रूपी जुए को अपने कंधे से उतार फेंकेगा।

हमारे अंदर पूर्ण सत्य को प्राप्त करने की प्यास जागेगी। हम आंशिक सत्य से संतुष्ट नहीं होंगे। पदार्थों को उनकी समग्रता में देखने में समर्थ होंगे। उनके अंतर्निहित सत्य को, उनके मूल को, संसार में उनके अस्तित्व के प्रयोजन को एक

साथ देखने के अभ्यासी होंगे। हम अदिव्य, मिथ्या प्रतीत होनवाले पदार्थों में आत्मा की दिव्यता के दर्शन करने की क्षमता से युक्त होंगे। वे हमसे बोलेंगे। उनके भीतर एक दिव्य पुरुष को आनंदमय मुस्कान बिखेरता अनुभव करेंगे। आकारों में निराकार का दर्शन, रूपों में अरूप के माधुर्यपूर्ण अमृतमय स्पर्श की अनुभूति पृथ्वी पर आत्मा के अवतरण का औचित्य संसिद्ध करेगी। मनुष्य सूक्ष्म इंद्रियों के द्वारा ही नहीं, वरन्, शारीरिक चेतना के द्वारा, शरीर के द्वारा भी आत्मा की दिव्यता में भाग लेगा, उसके आनंद का भोग करने में समर्थ होगा। हम शारीरिक चेतना के द्वारा भी आत्म-साक्षात्कार करने में समर्थ होंगे। हमारा शरीर, उसकी हर कोशिका सचेतन होगी। उनमें रूपान्तर के लिए अभीप्सा जागेगी। शरीर मनोमय पुरुष के शासन से पूर्णतः मुक्त होगा। जीवन-मार्गों पर चलने के लिए वह सीधा, बिना मानसिक चेतना के हस्तक्षेप के आत्मा से प्रेरणा ग्रहण करेगा। आत्मा की दिव्यता में पूर्णतः रूपांतरित होने के लिए संकल्पित होगा। भले ही आज हमें यह सब असंभव प्रतीत होता है, किन्तु, श्रीअरविन्द के अनुसार – मानव शरीर का दिव्यता में रूपान्तरण मनुष्य जाति की भावी नियति है।

अंधकार जितना घना होगा, उसकी अवधि जितनी लंबी होगी प्रकाश के लिए प्यास, उसके लिए व्याकुलता उतनी ही अधिक तीव्र होगी।

निर्वाण नहीं आत्म-परिपूर्णता

केवल बौद्धिक ज्ञान के सहारे हम अपनी सामूहिक अथवा जातीय समस्या का स्थायी समाधान प्राप्त नहीं कर सकते। बुद्धि हमारे सामने एक ऐसे स्तर-विशेष को उद्‌घाटित कर सकती है, एक गहन चिन्तन के द्वारा हमें ऐसी चेतना में उठा सकती है जहाँ हम मुक्त अनुभव करते हैं। बुद्धि के सहारे अपने यंत्रों से, मनोमय, प्राणमय तथा अन्नमय पुरुषों से, उनकी प्रकृति से अपने आपको पृथक् कर सकते हैं। साक्षी पुरुष की चेतना में स्थित हो कर मुक्त चेतना में अपना निवास संभव बना सकते हैं। विश्व-प्रकृति-सिन्धु को अपने से बाहर देख सकते हैं। जिसकी कोई तरंग हमें अशांत करने में समर्थ नहीं होती। हम अविचल रहते हुए जीवन के सब व्यापारों को यथोचित ढंग से पूर्ण करते, अपना कर्तव्य निभाते हैं। इस स्तर पर हम सुखी, शांत आनन्दपूर्ण जीवन व्यतीत करने में, अपने आपको नित्य मुक्त, शुद्ध अनुभव करने में सफल हो सकते हैं।

हम मानते हैं अपने आपमें यह उपलब्धि एक महान वस्तु है। सामान्य मानव के चेतना-स्तर से परे की वस्तु है। किन्तु यही सब कुछ नहीं है। मुक्ति की यह स्थिति रिक्तता है। शून्यता है। आत्मा की परिपूर्ण आनंदमय अवस्था नहीं। हम देख रहे हैं कि अपने यंत्रों से अपने आपको पृथक् करने मात्र से हमारी

आत्मा संतुष्टि अनुभव नहीं करती। वह चाहती है कि उसके यंत्र आत्मा की दिव्यता में भाग लें। परम चैतन्य की ओर उद्घाटित हों। आत्मा की ज्योति का अवतरण अपने अंदर संभव बनायें और उसके द्वारा रूपान्तरित हों। वह हमारे जीवन को रूपान्तरित देखने की अभिलाषी है। वह चाहती है कि परमात्मा की आत्म-अभिव्यक्ति रूप इस सृष्टि में आत्मा की चेतना, उसकी दिव्यता प्रवाहित हो और धरती पर जीवन उत्थान लाभ करे। आत्मा की शांति से, उसके सामंजस्य से पृथ्वी का वातावरण ओत-प्रोत हो।

हमें रूढ़िगत धारणाओं से ऊपर उठना है और पृथ्वी पर अवतरित, नई चेतना के, अतिमानसिक चेतना के प्रभाव में रहना सीखना है। अतिमानसिक चेतना हमें पदार्थों का अन्तर्निहित सत्य दर्शाने में सब प्रकार समर्थ है। उसे प्राप्त करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि संसार से परे किसी निर्वाण में, अस्तित्वविहीन शून्य में खो जाना सृष्टि में अवतरित आत्मा का लक्ष्य नहीं है। दूसरे शब्दों में – लय होना, अस्तित्व से बाहर जाना, व्यक्तित्व को त्याग कर निर्वाण प्राप्त करना यहाँ सृष्ट पदार्थों का अन्तर्निहित सत्य नहीं है।

अतिमानसिक चेतना में उठकर भागवत संकल्प को जानना हमारे लिए सरल, सहज, स्वाभाविक हो जाता है। हम देखते हैं कि सृष्टि के पीछे एक उद्देश्य है। इसमें एक प्रयोजन,

एक अर्थ छिपा है। उसे दृष्टिकोण में रख कर ही परमेश्वर ने इसकी रचना की है। मनुष्य के जीवन का अर्थ ही है उस प्रयोजन को खोजना। उस अर्थ को जानना। उसको जानने के पश्चात् हम देखेंगे कि सृष्टि से परे किसी निर्वाण में लय होना एक अति तुच्छ संकीर्ण मनोवृत्ति है। सीमित अहंमयी व्यक्ति-चेतना की परिधि की उपज है, अज्ञानजनित पृथकत्व की चेतना पर आधारित है। सीमित चेतना में पदार्थ मात्र को अपने दिव्य आलिंगन में बांधने की समग्र दृष्टि नहीं होती, "मम आत्मा सर्वभूतात्मा" का भाव धारण करने में वह असमर्थ होती है। उसे चेतना का वह स्तर उपलब्ध नहीं होता जिसमें स्थित होकर हम सम्पूर्ण सृष्टि को एक पुरुष का विस्तार देखते हैं, जो अपने अंदर, अपने लिए, अपने आपसे खेल रहा है। उस चेतना-स्तर पर पलायन का, संसार से दूर होने का भाव एक विजातीय वस्तु है – मानसिक अहंकार के द्वारा हमारे ऊपर थोपी गई वृत्ति, अवचेतन सिन्धु से उठी संस्कारों की एक तरंग होती है।

मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण परम सत्ता की, चरम अस्तित्व की अवस्थाएँ हैं। आत्म-विकास के मार्ग में स्थितियाँ हैं। हमारी पूर्णता के लिए, व्यक्ति-सत्ता के समग्र विकास के लिए अनिवार्य अनुभव हैं, लक्ष्य नहीं।

दिव्य देन

युग-धर्म हर मानव के लिए, हर देश तथा जाति के लिए एक ही होता है। उसकी मांग का दबाव सबके ऊपर एक समान होता है। किन्तु, जो उसके प्रति उद्‌घाटित होते हैं उनके द्वारा वह नई चेतना विकीर्ण करता है। वे प्रभु के यंत्र बनते हैं। उनके सम्मुख ही विकास के उच्चतर स्तर उद्‌घाटित होते, नई उपलब्धियों के द्वार खुलते हैं।

वर्तमान युग-धर्म हमसे मांग कर रहा है कि भूतकाल की सभी उपलब्धियों को सोपान बनायें। उन्हें अंतिम न समझें। वे अंतिम नहीं हैं। सृष्टि-विकास-क्रम में अंतिम जैसी कोई वस्तु नहीं है। न हो सकती है। भगवान अनंत संभावनाओं के अनंत सिंधु हैं। "हिरण्यगर्भ" सृष्टि में निरन्तर प्रवाहित है। उसमें से असंख्य संभावनाओं के बीज पृथ्वी पर सदा अवतरित होते रहेंगे।

इस युग के लिए परम पिता परमात्मा जो संदेश संसार को प्रदान करना चाहते हैं उसके लिए उन्होंने श्रीअरविन्द को चुना है। युग-धर्म उनकी वाणी के द्वारा मुखरित हुआ है। नया लक्ष्य, जो मानव आत्मा के सम्मुख वे रखना चाहते हैं, उनका वाङ्मय उससे ओत-प्रोत है।

अभी संसारं श्रीअरविन्द के द्वारा प्रदत्त संदेश के प्रति अनभिज्ञ है। किन्तु, अतिमानसिक चेतना – जो संसार में

अवतरित हुई है, जिसका अवतरण उन्होंने अपनी दीर्घ एवं महान् तपस्या से संभव बनाया है – इसके लिए प्रयत्नशील है। शीघ्र ही मनुष्य जागेगा। बाह्य के स्थान पर आन्तरिक उपलब्धियों को, आन्तरिक व्यक्तित्व को अधिक महत्व प्रदान करेगा। मानसिक चेतना का अतिक्रमण कर अतिमानवता में उत्थान लाभ करना उसके लिए स्वाभाविक होगा। आध्यात्मिक सत्य को अभिव्यक्त करना उसके जीवन का स्वरूप होगा।

संसार संक्रमण काल के अंतिम चरण में है। उसके पश्चात् सब सामंजस्यपूर्ण होगा। यही धरती पर जीवन की भावी नियति है। चेतना के उच्च स्तरों पर यह अनुभूत है, देखा जा चुका है। शीघ्र ही मनुष्य अतिमानसिक चेतना के प्रति सचेतन होगा। सूक्ष्म भौतिक स्तर पर कार्य करने की क्षमता तथा दृष्टि उसमें विकसित होगी। वह दिव्य उपलब्धियों के प्रति प्रयत्नशील होगा। उनकी प्राप्ति में जो भी शर्तें होंगी, पूरी करने को भीतर से उद्यत होगा। वह स्वयं अलौकिक क्षमताओं से सम्पन्न होगा, साथ ही संसार में जीवन को दिव्य ऐश्वर्य से, समृद्धियों से परिपूर्ण करेगा। वर्तमान युग में भागवत संकल्प की चरितार्थता का स्वरूप यही होगा।

नया दृष्टिकोण

एक दिन मैं श्रीरामकृष्ण के चरणों में बैठूंगा और उनसे पूछूंगा – कामिनी और कंचन के त्याग का क्या अर्थ है। यह शिक्षा किसी एक व्यक्ति के लिए, किसी एक समूह के लिए है या सम्पूर्ण मानव-जाति के लिए। कारण, हमारे श्रुतिशास्त्र इस प्रकार के त्याग की बात नहीं करते। मनुष्य के अंदर उसकी आत्मा भी इसका समर्थन नहीं करती। आज मनुष्य इस बात को भली प्रकार समझ रहा है कि बाह्य त्याग दुर्बलता है। आन्तरिक त्याग ही सही, सच्चा त्याग है। तुम स्वयं भी यह मानते रहे। तुम्हारे स्वभाव में, जीवन में, व्यवहार में हमें यह देखने को मिला है। फिर इस सूत्र का क्या अर्थ है, जिसमें संकीर्णता की अवांछनीय गन्ध है। जीवन का उद्देश्य त्याग नहीं है। मानव आत्मा पृथ्वी पर त्याग के लिए अवतरित नहीं होती। इसके विपरीत उसमें परिपूर्णता को अपने लक्ष्य रूप में चुनती है। जीवन का, कर्मों का, पदार्थों का त्याग नहीं उनका रूपान्तर, आत्मा की दिव्यता में उनका दिव्यीकरण संसार में सृष्ट पदार्थों की नियति है। परम सत्ता सृष्टि को इसी ओर ले जा रही है। पदार्थों का उनके मूल स्वरूप में परिवर्तन करना, जो भीतर है बाहर लाना उसका उद्देश्य है। और जब तक यहाँ सब आत्मा के आनंद से आनंदमय, उसके माधुर्य से परिपूर्ण, दिव्यता से

ओत-प्रोत नहीं हो जाता – उसका संकल्प क्रियाशील रहेगा।

हमारी मान्यता है कि जब चेतना का परिवर्तन हो जाता है हमारे लिए.कामिनी और कंचन का रूप बदल जाता है। नारी, नारी नहीं जगत जननी दिखायी देती है। उसमें भगवती माता का मातृत्व हमें स्पष्ट झलकता है। कंचन संसार में एक निरर्थक, त्याज्य, घृणित, बन्धनकारक पदार्थ नहीं, वरन् मानव-जीवन को सुखी, समृद्ध, वैभवपूर्ण बनाने के लिए, उसमें भौतिक एवं आध्यात्मिक परिपूर्णता लाने के लिए एक अनिवार्य साधन है और जब तक सृष्टि रहेगी – उसका स्थान सुरक्षित रहेगा।

सृष्टि में कुछ भी निरर्थक नहीं, अनुपयोगी नहीं, त्याज्य नहीं। केवल हमें हर पदार्थ का उपयोग जानना है। उसे उसका यथोचित स्थान प्रदान करना सीखना है। क्रोध, घृणा, हिंसा-द्वेष, शत्रुता तभी तक हैं जब तक हम जीवन जीने की कला नहीं सीखते। आज, जबकि मनुष्य निम्न प्रकृति में निवास का अभ्यासी है, उसे यह अनुभव कराने के लिए कि वह आंतरिक सत्य से, आत्मा के प्रभाव से, उसके स्वभाव से, जीवन में उसके संकल्प की चरितार्थता से कितना दूर है, इनकी आवश्यकता है। ये तत्व, ये शक्तियाँ मनुष्य को सिखाती हैं कि उसने जीवन का पाठ उचित रूप में नहीं पढ़ा। चेतना का वह स्तर उपलब्ध नहीं किया जहाँ उठ कर वह स्थायी सुख में निवास संभव बना सकता है। सर्वत्र आत्मा को, सत्यं, शिवं, सुन्दरम् को देखना,

संसार में अविचल रहता हुआ जीवन मार्गों पर अग्रसर होना, आत्मा की मुक्त चेतना में निवास संभव बनाना उसके स्वभाव की वस्तु बन सकती है।

आत्मा की शांति से, सामंजस्य से युक्त जीवन, पृथ्वी पर जीवन की भावी नियति है। इसे दृष्टिकोण में रख कर हमें गन्तव्य का चुनाव करना है। उस पर अग्रसर होना है। जब मनुष्य आंतरिक सत्य में निवास करेगा, उसी का चलाया चलेगा, जब उसके जीवन में, कर्मों में, विचारों में आत्मा की दिव्यता प्रवाहित होगी, आसुरिक तत्व अनावश्यक ठहरा दिये जायेंगे। जिन शक्तियों ने इनकी रचना की थी, वे इनके साथ इन्हें हृदय में धारण किये रूपान्तरित हो जायेंगी। सृष्टि में शास्त्र जिन्हें विरोधी शक्तियाँ कहते हैं सब परमेश्वर की सेवा में संलग्न हो जायेंगी। विरोध नहीं, उनका सहयोग मनुष्य को प्राप्त होगा।

जिसकी अपनी समस्या है वह दूसरों की समस्याओं का हल प्रदान करने में समर्थ नहीं हो सकता।

जिसकी अपनी आवश्यकताएँ हैं वह संस्था के लिए पूर्णतः समर्पित जीवन यापित नहीं कर सकता।

जिसे व्यक्तिगत प्रशस्ति चाहिये वह भागवत यंत्र नहीं बन सकता।

मस्ती – उसका स्वरूप (पत्र)

आत्मा का आनंद जब हमारी प्राणमय सत्ता में अवतरित होता है वह विभोर हो उठती है। हम चाहें तो उसे मस्ती कह सकते हैं, मस्ती का स्वरूप प्रदान कर सकते हैं। मस्ती प्राण के द्वारा आनंद का उपभोग है जो कि हमारी आत्मा को बहुत नहीं सुहाता। आत्मा किसी भी उपलब्धि का उपभोग स्वयं करना नहीं चाहती। वह हर उपलब्धि संसार के लिए प्राप्त करती है। अपने पुरुषार्थ का, अपनी तपस्या का स्वर्णिम फल स्वयं भोगना स्वार्थपरता है जो कि आत्मा के लिए कभी भी स्वाभाविक नहीं होता। वह नहीं चाहती कि उसके यंत्र अपनी उपलब्धियों का स्वयं उपभोग करें। शांति एवं आनंद में डूबे रहें। कर्तव्य की ओर ध्यान न दें। परम धाम में निवास करना, अमृत सिंधु में डूबे रहना, दिव्य गोद में मोद लेना सहज है, और जब तक शिशुता को पीछे छोड़ कर विराट् पुरुष के रूप में अपनी सत्ता का दर्शन नहीं करते – तब तक हमारी आत्मा इस प्रकार के सुन्दर, सुहावने दिव्य सपने अपने हृदय में संजोती है। किन्तु, इससे लक्ष्य-पूर्ति नहीं होती। हम लक्ष्य संसिद्ध नहीं कर सकते। जो लक्ष्य निर्धारित कर वह संसार में बार-बार जन्म लेती है, पृथ्वी के कष्टपूर्ण जीवन में अवतरित होती है, वह है संसार के हर प्राणी को सुखी करना। मानव मात्र का आत्मा की मुक्त

चेतना में उत्थान संभव बनाना। उसके जीवन को दिव्यता में ओत-प्रोत करना। जिससे कि दुख-दैन्य, जरा-व्याधि, मृत्यु आदि से पृथ्वी का वातावरण मुक्त हो। मस्ती, शब्द के सही अर्थ में, एक स्वर्णिम अवस्था हो सकती है। किन्तु, अगर मस्ती हमें कर्तव्य-पालन से पीछे खींचती है तो हमें स्वीकार्य नहीं। हमें आत्मा में सचेतन रहते हुए कर्तव्य-पालन करना है। मस्ती में, मस्ती के द्वारा प्रायः कुछ भी सृजनात्मक होता नहीं देखा गया। मस्ती में हम उच्च चेतनाओं के अवतरण अपने अंदर संभव नहीं बनाते। एक प्रज्ज्वलित जीवन्त दिव्य ज्योति के स्तम्भ का रूप धारण नहीं कर सकते। हमारी मानसिक सत्ता नये आरोहण के लिए अभियान स्थगित कर देती है। उसकी अभीप्सा शिथिल हो जाती है। मस्ती में बितायी घड़ियाँ हमारी अपनी होती हैं। हम अपने लिए जीते हैं। हमारा निवास व्यक्ति-चेतना में होता है।

मस्ती में हम चाहे जागरूक भी रहें, चेतना का स्तर ऊँचा बनाये रखें, चाहे हम अपनी प्रसन्नता को आंतरिक कहें, चाहे आत्मिक ही हो, हम निष्क्रिय होते हैं। मस्ती में हम उस चिंतन से दूर हो जाते हैं जो हमें यह दर्शाता है कि संसार में जीवन का एक लक्ष्य है। आत्मा के पृथ्वी पर अवतरण का एक दिव्य प्रयोजन है। हमें चाहिये कि उस लक्ष्य को उस प्रयोजन को खोजें। जीवन एक खोज है और उसे खोज का स्वरूप प्रदान

करें। यह खोज उस सृष्टिकर्ता की है, जो इन प्राणियों तथा पदार्थों की सृष्टि कर इनमें छिप गया है। अगर हम जीवन में उसे न खोज सकें, उसकी प्राप्ति की ओर सुनिश्चित पग न उठा सकें तो समझें कि हमने जीवन का अमूल्य समय नष्ट किया है। खिलौनों से खेले हैं, गुरुकुल नहीं गये। दीक्षित नहीं हुए। जीवन के सार को, उसकी सार्थकता को नहीं समझे, सिद्ध नहीं किया।

जो मस्ती में निवास करना चुनते हैं, निश्चय उन्हें देश, जाति धर्म की चिन्ता नहीं होती। अन्यथा ये भागवत यंत्र होना लक्ष्य रूप में चुनते। अपनी तपस्या से, चेतना से, बलिदान से, पुरुषार्थ से मानव जाति को संताप-रहित करने का प्रयास करते। मस्ती हमें यह भुला देती है कि जिस देश ने, जाति ने हमें जन्म दिया है, उसके प्रति भी हमारा कुछ कर्तव्य बनता है। जिस समाज में हम पले, शिक्षित हुए, उसके लिए भी हमें कुछ करना है। जिस परम पिता ने जगत की सृष्टि की, जिसके द्वारा हम सृष्ट हैं, हमें यह तन, मन, बुद्धि एवं विवेक शक्ति प्रदान की गई है, जो हमारे पथ-प्रदर्शन के लिए, हमारी सहायता के लिए हृदय में विराजमान है, उसे हम भूल जाते हैं। मस्ती में हम किसी भी विचार में, गहरे चिंतन में डूबना नहीं चाहते। जीवन जिस स्थिति में है, उसे स्वीकार कर उसे ही मस्ती में जीना चाहते हैं। पुरुषार्थ नहीं करते। निम्न के स्थान पर उच्च स्तर का चुनाव नहीं करते। निम्न को उच्चतम में रूपांतरित करने की

अभीप्सा हमारे हृदय में नहीं उठती। हम इसकी चिंता भी नहीं करते या नहीं के बराबर करते हैं कि भीतर आत्मा की क्या इच्छा है, उसने कौन-सी दिशा हमारे लिए निश्चित की है, कौन-सा मार्ग प्रशस्त किया है। हम अपने कर्तव्य की अर्थात् भागवत संकल्प को जानने की, उसे पालन करने की ओर ध्यान न देकर मस्ती में डूबे रहना पसंद करते हैं। अगर हम स्वयं को जगा हुआ समझ रहे हैं तो दूसरों को जगाना हमारा कर्तव्य होता है – इस ओर हम ध्यान नहीं देते। मस्ती में हम अपनी वर्तमान स्थिति से संतुष्ट होते हैं। उसमें डूबे रहने के सम्मुख, उसकी तुलना में हमें संसार में कोई श्रेयस्कर कर्म गोचर नहीं होता। हमें समझना है, हमारे शास्त्र हमें इंगित कर कह रहे हैं कि जीवन का, मानव प्रकृति का स्वाभाविक प्रवाह निम्नगामी है। उसकी प्राकृतिक प्रवृति सुख-भोगों की ओर है। हमें इस प्रवाह को परिवर्तित करना है। उसे ऊर्ध्वमुखी बनाना है। वृत्तियों को शुद्ध तथा अंतर्मुखी करना है। जीवन को सचेतन होकर, वस्तुओं के आंतरिक सत्य का अवलोकन करते हुए जीना है। हमारा जीवन सत्यमय, आंतरिक सत्य की चरितार्थता होना चाहिये। उसका स्वरूप दिव्य, आत्मा की दिव्यता से पूर्ण होना चाहिये।

हमारी इस मस्ती के पीछे मनुष्य जाति का कितना श्रम है, सभी वर्गों की, समाजों की कितनी तपस्या – जो इसमें हेतु हैं, उनका कितना बलिदान हम देख रहे हैं। "मुझे उनके लिए कुछ

करना है", कर्तव्य की इस भावना से हम दूर चले जाते हैं। जो स्थिति कर्तव्य को भुला दे उससे हानिकारक और क्या हो सकता है ! अपनी सत्ता के सत्य से दूर, उससे वंचित रहना सबसे महान क्षति है। जीवन में अगर सृष्टिकर्ता को न देख पाये, परम पिता से संबंध न हुआ तो इससे बड़ी भटकन क्या होगी ! अगर हम यह समझ लें कि मस्ती के पीछे अकर्मण्यता की छाया है तो हमें प्रगति-पथ पर आगे बढ़ने में सहायता प्राप्त होगी। हम मस्ती में डूबे रहना त्याग कर विकास-पथ पर आरूढ़ होंगे। अपने सम्मुख ऊँचे से ऊँचा, जो कि हमारे प्राचीनतम श्रुति-शास्त्रों के अनुरूप होगा, आदर्श रखेंगे। अकर्मण्यता से बाहर आकर कर्तव्य-पालन में स्थित न हुए तो जीवन का औचित्य, उसकी सार्थकता कहाँ ! जीवन के रहस्यों को, सृष्टि के भेद को अगर न जाना, अपने सच्चे स्वरूप को अगर न पहचाना तो सब व्यर्थ गया ही समझें। कर्तव्य से मुख मोड़कर मस्ती में डूबे रहना भीतर आत्मा को नहीं सुहाता। कारण, इससे मानव-जाति को कोई लाभ नहीं। हम अकेले इसका उपभोग करते हैं। स्वधर्म-पालन को त्याग कर, आत्म-आदेश की अवहेलना कर जीवन-पुष्प जीवन-स्वामी के चरणों में चढ़ाने में हम समर्थ नहीं हो सकते। उसकी इच्छा को जानने का प्रयास न कर, जो कर्तव्य उसने हमारे लिए चुना है, उसके प्रति सचेतन न होकर मस्ती में डूबना, अपनी इच्छा के

अनुसार जीवन और कर्मों को स्वरूप प्रदान करना, इसमें हमारा अहंकार संतुष्टि अनुभव कर सकता है, हमारी आत्मा नहीं। हमारे इस वर्तमान व्यक्तित्व के पीछे, इसके परे एक दिव्य व्यक्तित्व भी है जो कि हमारा सच्चा व्यक्तित्व है। उसकी इच्छा जाने बिना जीवन को अपनी इच्छाओं की पूर्ति का क्षेत्र बनाना अज्ञान है, शास्त्रों के अनुसार अज्ञानमय स्थिति है। जिससे हर व्यक्ति को बाहर आना चाहिये। इसी के लिए मानव-आत्मा बार-बार पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करती है। हमारे पूर्वजों ने, ऋषि-मुनियों ने मानव-स्वभाव की इस दुर्बलता का अवलोकन बहुत पहले किया था। इससे उबारने के लिए उन्होंने आंतरिक तप-त्याग तथा संयम का पथ हमारे सम्मुख प्रशस्त किया था। जिससे कि मानव पृथ्वी पर एक सार्थक जीवन यापित कर सके। आत्मा में निहित सत्य को उपलब्ध कर उसे जीवन में चरितार्थ कर सके। यही पृथ्वी पर जीवन का सर्वोच्च सार है। हम जो आज सब प्रकार सुरक्षित प्रकाश-पथ पर आरूढ़ हैं और इतनी तीव्रता के साथ आत्म-विकास में सफलता प्राप्त कर रहे हैं, यह उन्हीं की तपस्या का फल है। हमें समझना है कि अगर इस सब के पीछे उनका इतना महान बलिदान, इतनी कठोर तपस्या न होती तो मार्ग की ये सब सुविधाएँ हमें सुलभ न होतीं। जब तक सृष्टि रहेगी, मनुष्य जाति हमेशा उनकी आभारी रहेगी। उनके द्वारा डाली नींव पर ही हम आज नव-युग निर्माण की बात सोच सकते हैं।

मानव-आत्मा स्वभाव से जोशीली होती है। नये अनुभव प्राप्त करना, नये क्षितिजों का अनुसंधान करना, नई उपलब्धियों को सिद्ध करना, उसे अतिशय रुचता है। उसमें कर्म की, प्रगति की, विकास की प्रवृत्ति है। वह हर जन्म में संसार को कुछ देने के लिए अवतरित होती है। अपने विकास को अधिक से अधिक ऊँचे स्तर पर उठाने के लिए पुरुषार्थ करती है। अगर हम किसी जन्म में प्रगति नहीं कर पाते – जो कि उस युग विशेष में किसी आध्यात्मिक तेजस्वी गुरु, प्रवर्तक अथवा आचार्य के द्वारा प्रभावित होकर, निष्क्रियता का पाठ पढ़ने से, अकर्मण्यता की शिक्षा ग्रहण करने से – जिसका व्यावहारिक रूप होता है, जीवन और जगत के त्याग की भावना को ही चरम साधन के रूप में, मुक्ति के एक मात्र पथ के रूप में स्वीकार कर लेना – तो हमारी आत्मा उस जन्म को निरर्थक समझती है।

मस्ती का सिद्धान्त स्वीकार करने से पहले हमें सावधान हो जाना चाहिये – हमें समझना है कि संसार कर्म-क्षेत्र है और हमें किसी भी ऐसे सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करना चाहिये जो कर्तव्य से दूर रहने की बात करता हो।

भावी मार्गदर्शक

आज तेरी उपस्थिति अधिक ठोस रूप में थी। मानों तू अनंतता को समेट कर अपने व्यक्तित्व का एक केन्द्र बनाकर मेरे सम्मुख प्रकट हुआ। मेरा प्रणाम स्वीकार किया। मनुष्य जाति की व्यथा से पीड़ित मेरी आँखों से पानी गिर रहा था। स्पष्ट था वह तुझे सहन नहीं हुआ। और तू अश्रु-जल को पोंछने के लिए ही आया था। तेरे शब्दों में अपार सांत्वना थी। तेरे दिव्य स्पर्श में अलौकिक सुख था। तेरी दृष्टि में पिता के प्रेम के पीछे मातृ-स्नेह झलक रहा था। मानों, मेरी पीड़ा से तू भी पिंघल रहा था।

बाह्य जीवन की व्यस्तता के कारण सम्पर्क कट जाने से मैं अकेला था। मुझे एक प्रेरणा ने पकड़ा और यह लिखने को प्रेरित किया :— जो मानवता का मार्ग-दर्शन करेगा उसे स्वसत्ता का अतिक्रमण करना होगा। वह जो भी है उससे ऊपर उठना होगा। जो वह जानता है, जो उसने अध्ययन किया है, जो उसकी अनुभूति अथवा उपलब्धि है, जो भी उसका विश्वास है, चाहे उसकी मान्यता जो हो, सबको एक-एक कर पीछे छोड़ते हुए उस दिव्य चेतना में अपना आरोहण संभव बनाना होगा, जो संसार के ऊपर झुकी हुई स्पष्ट गोचर हो रही है। जो मनुष्य को उसकी धार्मिक, जातीय तथा व्यक्ति-भावापन्न सीमित चेतना से

ऊपर उठाना चाहती है। सीमित अहंभाव के स्थान पर उसे विश्व-पुरुष के चेतना-स्तर पर प्रस्थापित करना चाहती है। पूर्णतः अज्ञानमुक्त कर आत्मा की मुक्त चेतना में उसका निवास संभव बनाना चाहती है। उसे वह चेतना प्रदान करना चाहती है जिसमें उठ कर मनुष्य संपूर्ण सृष्टि को एक कर्म देखता है। इसमें एक जीवन एक चेतना ओत-प्रोत अनुभव करता है। सारी पृथ्वी को एक परिवार, सब के अंदर एक पुरुष का निवास, मानव मात्र को एक दिव्य गोद में पलते देखता है। जहाँ केवल आनन्द है। आनन्द में, आनन्द के द्वारा आनन्द के लिए ही जीवन है, जगत है, प्रगति है, पुरुषार्थ है।



मनुष्य के अंदर एक नई चेतना जागेगी। उसके भाव विशाल होंगे। वह विश्व-प्रेम के द्वारा अधिकृत होगा। स्वार्थ-भाव से ऊपर उठेगा। दूसरों को सहायता करने में, उनका दुख बांटने में आंतरिक संतुष्टि अनुभव करेगा। उसके हृदय में यह भाव गहरी जड़ जमायेगा कि हम सब एक हैं। यहाँ जीवन एक है। चेतना एक है। हम एक पिता की संतान हैं। एक धरती माता की गोद में पल रहे हैं।

मैं – मेरा भाव

व्यक्तिगत स्तर पर चाहे कोई मेरा कितना भी अपमान करे, कितनी भी हानि पहुँचाये, मेरे ऊपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मुस्कान के साथ आगे बढ़ जाता हूँ। उस व्यक्ति-विशेष के लिये मेरा जो भाव था वैसा ही रहता है। कोई प्रतिक्रिया नहीं उठती। भाव परिवर्तित नहीं होता। क्षुब्ध नहीं होता हूँ। मैं उसके हृदय में एक दिव्य पुरुष को देखता हूँ जो मेरी आत्मा का, मेरे सच्चे व्यक्तित्व का सखा है। दोनों के पीछे एक ही भागवत उपस्थिति को अनुभव करता हूँ। हम दोनों में एक ही चैतन्य कार्य कर रहा है। एक ही जीवन, एक ही अस्तित्व दो धाराओं में प्रवाहित है। अपने मूल में हम दोनों एक हैं, अभिन्न हैं।

मैं व्यक्ति की पहचान उसके देश से, धर्म से, जाति से नहीं करता। व्यक्ति के भीतर झांकने का प्रयास करता हूँ। वहाँ उसी ईश्वर को पाता हूँ जो मेरी सत्ता का स्वामी है। मैं और मेरे सम्मुख उपस्थित व्यक्ति, दोनों एक ही पथ के पथिक हैं। दोनों शाश्वत यात्री हैं। दोनों का गन्तव्य एक है। कारण, मूल एक है। मूल ही मानव आत्मा का सच्चा गन्तव्य है। जो सबका एक है। हम सब एक ही दिव्य धाम से अवतरित हुए हैं। यहाँ, संसार में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, जैन आदि चिह्नों से अंकित हैं। इन चिह्नों के द्वारा ही परस्पर परिचय करते हैं। इन्हें ही मनुष्य

का संपूर्ण व्यक्तित्व समझते हैं। इनमें अधिक से अधिक सच्चाई को ही मानव जीवन की सफलता मानते हैं। वास्तव में यह परिचय हमारी यांत्रिक सत्ता का, बाह्य व्यक्तित्व का होता है। अपने तथा दूसरों के सच्चे स्वरूप को हम नहीं देख पाते। शास्त्र कहते हैं बाह्य सत्ता एक आवरण मात्र है और उसे भेद कर आंतरिक सत्ता का दर्शन करना अभी मानव मन की स्वाभाविक क्षमता नहीं है। पर्दे को चीर कर अंतर्ज्योति का दर्शन करना, आत्मा के साथ तादात्म्य संभव बनाना योग-साधना से संसिद्ध होता है। यहाँ हम इतना अवश्य कहेंगे, योग साधना, यौगिक जीवन, यौगिक निद्रा, यौगिक जागरण, योगयुक्त होकर कर्म करना अभी मनुष्य की सामान्य दिनचर्या का विषय नहीं बना है। यही कारण है कि युग पर युग बीतते जा रहे हैं, किन्तु मनुष्य जाति अभी भी अपने गन्तव्य से भटक रही है। हम मन, शरीर तथा इंद्रियों को ही अपना आप समझते हैं। इनकी इच्छाओं को अपनी मानते हैं। अपने पूर्ण व्यक्तित्व के विषय में सचेतन नहीं हैं। शास्त्रों की उस दिव्य वाचा की ओर ध्यान नहीं देते जहाँ वे हमें संबोधित कर कह रहे हैं – हे मानव ! अपने सच्चे व्यक्तित्व में जाग। तू देखेगा कि तू इतना मात्र नहीं है, एक असहाय-सा प्राणी, जो प्रकृति की शक्तियों के हाथ का खिलौना मात्र हो। तू अपनी मूल सत्ता में एक अजन्मा, आनन्दमय विराट् पुरुष है। अनन्त शक्तियों का, अति-भौतिक तथा दिव्य

क्षमताओं का सिन्धु – यहाँ तक कि स्वर्ग का साम्राज्य भी – तेरे अंदर निहित है। और न चाहते हुए भी वेदना भरे शब्दों में कहना पड़ रहा है कि आज तक हम इस तथ्य के विषय में अनभिज्ञ हैं, इससे वंचित हैं।

परमात्मा ने मेरे अंदर यह भाव कूट-कूट कर भर दिया है कि पृथक्-पृथक् भासित होते हुए भी ये प्राणी अपने मूल में एक हैं। यहाँ दूसरा कोई नहीं, पराया कोई नहीं। सब अपने हैं। आत्मीय हैं। केवल विकास का स्तर भिन्न होने से चेतना-स्तर भिन्न है और यही हमारे दृष्टिकोण का, पथ की भिन्नता का कारण होता है।

द्वार-रहित ज्योतिर्मय गुफा के अंदर मौन वक्ता को हमने सर्वव्यापक सत्ता के साक्षित्व में बिना श्रोत्रों के सुना है। "सर्वभूत को मेरा स्वरूप देख, हर घटना के पीछे मेरा हाथ। मेरी कृपा में, सहायता में जिनकी श्रद्धा अडिग है उनकी मुस्कान कोई नहीं छीन सकता। समता अनिवार्य है। चित्त की प्रफुल्लता में ही शांति, ज्योति एवं चेतना का अवतरण संभव होता है।"

अहंकार की भूमिका

व्यक्ति अहंकार के द्वारा अधिकृत हैं। उसी के चलाये चल रहे हैं। उच्च पदाधिकारी बनने की, दूसरों का पथ-प्रदर्शन अथवा उन्हें शासित करने की प्रवृत्ति चारों ओर, हर देश में बलवती हो रही है। मनुष्य में यह अहंकार अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए धर्म की, धार्मिकता की आड़ लेता है। धर्माध्यक्ष का पद अधिकृत कर अपनी इच्छा को धर्म, एक धार्मिक कर्तव्य कह कर जन-साधारण को भ्रमित कर रहा है। अधर्म में, अनुचित कर्मों में, धकेल रहा है। सरल बुद्धि मानव को अपने धर्म की विशेषता जताकर, दूसरे धर्मों को, धार्मिकों को नष्ट करने की आज्ञा देता है। दूसरी जातियों को पृथ्वी-तल से मिटाने की योजना बनाता है। केसे भी, छल से, बल से, कौशल से, लोभ जगा कर मानव हृदय को अधिकृत करता है। उसमें प्रतिक्रिया का, हिंसा-द्वेष का भाव जगाता है। वास्तव में यह मानव-स्वभाव की ईर्षा है जिसकी जलन में वह विवेक शक्ति को, मानसिक संतुलन को खो बैठा है। यह प्रतिक्रिया की भावना है जो घृणा का रूप लेकर मानव-हृदय में ऊपर आ रही है। इसे ही वह धर्म कह कर ईश्वर का आदेश बता कर स्वयं पाप में प्रवृत्त हो रहा है और अपने अनुयायियों को अधोगति में गिरा रहा है। यह अहंकार है। सृष्टि में एक विजातीय तत्व है।

यह सही है कि एक समय मानव को अपने व्यक्तित्व को गठित करने में, उसे विकसित करने के लिए इसकी आवश्यकता थी। किन्तु, यह स्पष्ट हो चुका है, भली प्रकार देखा तथा अनुभव किया जा चुका है कि अब हमें इसकी आवश्यकता नहीं है। इसका समय जा चुका है। अब इसे पृथ्वी के वातावरण को छोड़कर कहीं अन्यत्र चला जाना चाहिये। हमें विश्वास है कि मानव हृदय में उत्तरोत्तर विकसित होती हुई उसकी आत्मा शीघ्र ही विश्व-चेतना-स्तर पर सचेतन होगी। मानव, विश्व-मानव-स्तर पर उठेगा। एक विशाल वैश्विक दृष्टि से वह जगत को देखेगा। सबको एक परम पिता की संतान समझेगा। अपना बंधु देखेगा। आत्मीय अनुभव करेगा। वर्तमान मानव-स्वभाव के दोष, उसकी दुर्बलताएँ, सीमित एकांगी आंशिक सत्य पर निर्धारित उसका दृष्टिकोण उसकी चेतना से झड़ जायेंगे। विशालता से भरपूर दिव्य प्रेम का स्रोत सर्वत्र, हर मानव-हृदय में फूटेगा। मानव मात्र दिव्य आलिंगन में बंधेगा। हम प्रेम के, सत्य के पुजारी होंगे। हमारी वसुधा सुख-शांति की, दिव्य सामंजस्य की खान होगी। मनुष्य समाज में उच्च पद प्राप्ति के इच्छुक नहीं, वरन् समाज के सेवक बनने के अभिलाषी होंगे। धरती माता की तपस्या स्वर्णिम फल लाभ करेगी। उच्च नील नभ से मधु-वर्षण होगा। दिशाएँ मधुमय होंगी। सब आनंदमय होगा।

———

दिव्य स्पर्श

मध्य-युगीन धर्म-प्रवर्तकों, आचार्यों एवं संतों के विषय में चर्चा चल रही थी। श्रीमाताजी ने दो-तीन बार चुटकी बजायी और कहा – आत्म-साक्षात्कार ऐसे दिया जा सकता है। उस दिन के पश्चात् यह शब्द मेरे गहन चिन्तन का विषय बन गया। मैं सोचा करता था कि अगर आत्म-साक्षात्कार इतना सरल है तो श्रीमाताजी ने मुझे अब तक क्यों नहीं दिया। ऐसे ही कुछ दिन बीते। आत्म-दर्शन की अभिलाषा की बेल मेरे हृदय में बढ़ती गई और दूसरी हर इच्छा का स्थान अधिकृत करती गई। शीघ्र ही वह स्वर्णिम दिवस आया। मेरे जीवन-आंगन में स्वर्गिक अमृत-वर्षण संभव हुआ। शरीर को अपना आप समझने की भ्रांति से मैं बाहर आया।

प्रतिदिन प्रातःकाल सभी आश्रमवासी श्रीमाताजी से आशीर्वाद प्राप्त करने एक-एक कर पंक्ति में जाते थे। यह नित्यप्रति की दिनचर्या थी। जब मैं श्रीमाताजी के समीप पहुँचा उन्होंने मुझे पुष्प दिये। मैंने अपना सिर क्षण भर के लिए उनके घुटनों पर रख दिया। उन्होंने सिर को छू कर आशीर्वाद प्रदान किया। मैंने सिर उठाया तो देखा श्रीमाताजी मुस्कान भरी मुद्रा में मेरी आँखों में ताक रही थीं। मैं झुका था। उनकी आँखों में देख रहा था। हाथों में पुष्प थे। हृदय में भक्ति-भाव उमड़ रहा था।

आँखें डबडबा रहीं थी। श्रीमाताजी ने बीच की दो अंगुलियों से मेरी भृकुटी को स्पर्श किया। सारी सत्ता सिंहर उठी। आँखों से नीला प्रकाश निकल रहा था। जिधर देखूं सब नीले प्रकाश में डूबा था। मुझे लगा कि कुछ अलौकिक घटित हुआ है। मैं तुरत आश्रम-आंगन में ही श्रीअरविन्द की समाधी के समीप ध्यान में बैठ गया। बैठते ही मेरी आंतरिक चेतना शरीर से पृथक् हो गई। मैंने अपने आपको सिर के ऊपर आकाश में देखा। लगभग सौ-सौ गज चारों ओर व्याप्त प्रकाश के बीच अपने आपको नाभी तक बैठा पाया। यह जीवात्मा के साथ मेरा तादात्म्य था। वहाँ स्थित हुआ मैं देख रहा था कि मेरा शरीर बैठा ध्यान कर रहा है और साधकों की पंक्ति श्रीमाताजी के पास जा रही है। जीवात्मा के साथ तादात्म्य में जो मेरी ठोस अनुभूति हुई, वह थी – मैं नित्य हूँ, शुद्ध हूँ, मुक्त हूँ। तादात्म्य से पहले, मुझे संबोधित कर जीवात्मा ने कहा था, जिसका भाव इस प्रकार है – ओ सुखवीर ! संसार के, संघर्षमय जीवन में क्यों कष्ट पा रहे हो। यह देखो – उसने दोनों करों को दोनों ओर फैलाते हुए कहा – जब चाहो इस स्थिति में आकर निवास कर सकते हो और सब प्रकार सुखी हो सकते हो।

प्रेरणाओं के स्तर

अधिकतर विचार विश्व-प्रकृति से आते हैं। सबल विचार आकार लिये होते हैं। पूर्ण एकाग्रता की स्थिति में हम विचार को अपने अंदर प्रवेश करते देख सकते हैं। एक महापुरुष की प्रेरणा भी विचार का, वाणी का रूप ग्रहण कर सकती है। प्रेरणाओं का स्तर हमेशा एक नहीं होता। आत्मा से ही नहीं, आंतरिक मन से भी प्रेरणायें आती हैं। वाणियाँ भी सुनायी देती हैं। उनके स्तर भी भिन्न हो सकते हैं। आंतरिक की भांति बाहर से भी वाणी सुनी जाती है। साधना के प्रारंभिक काल में प्रायः सब मिश्रित होता है।

"सामान्य जन ही नहीं, शिक्षित वर्ग भी संसार में आंतरिक संतुष्टि लाभ करने के लिए आत्मा को सांत्वना प्रदान करने के लिए कुछ धार्मिक कर्म करते देखा जाता है। इसके लिए व्यक्ति धर्म की, धर्म-गुरुओं की, किसी आचार्य अथवा संत की शरण ग्रहण करते हैं। सभी धर्म की अथवा सम्प्रदाय की सीमाओं में जी रहे हैं। सीमाओं के अंदर सुरक्षित अनुभव करते हैं। यह उनका बाह्य व्यक्तित्व है। अहंकार से चालित जीवन है। व्यक्ति धार्मिक होकर, धार्मिक कर्तव्यों को निभा कर संतुष्टि अनुभव करते हैं। संप्रदाय की सेवा में आर्थिक अथवा शारीरिक सेवा के द्वारा अपने आपको उऋण समझते हैं। कुछ अन्य हैं, जिनकी

दिनचर्या भिन्न है। वे मंदिरों में जाते हैं। प्रार्थना-पूजा अथवा कीर्तन आदि करते हैं। उनके अनुसार, उसके द्वारा उन्हें आशीर्वाद प्राप्त होता है। जीवन पर सुख बरसता है। मंगल छाया रहता है। जीवन-नौका निर्विघ्न आगे बढ़ती है। उनकी मांग केवल यही होती है कि वे जहाँ हैं सुखी रहें। शास्त्रों के अनुसार व्यक्ति-चेतना का यह स्तर सामान्य है। भीतर आत्मा जाग्रत नहीं है। उसमें उच्च जीवन जीने की, वर्तमान स्तर का अतिक्रमण कर एक ज्योतिर्मय स्तर पर – जो आत्म-चेतना से, आत्मा के आलोक से, उसकी दिव्यता से, विशालता से ओत-प्रोत हो – उठने की अभीप्सा की अग्नि अभी प्रज्ज्वलित नहीं हुई है। कुछ दूसरे यज्ञ-याग कर संतुष्ट होते हैं। जप में, स्वाध्याय में, ध्यान में प्रतिदिन कुछ घंटे बिताते हैं। वे समझते हैं कि उनके कर्म उत्तम हैं। शास्त्रों के अनुसार हैं। मानव फल की इच्छा से कर्म में प्रवृत्त होते हैं और मानते हैं कि इन श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार, स्वर्ग को, मुक्ति-मोक्ष अथवा निर्वाण को प्राप्त करेंगे।"

यहाँ तक मुझे कोई आपत्ति नहीं हुई। मैं शान्त भाव से सब सुनता गया। किन्तु जैसे ही उसने अपनी वाणी का दूसरा पक्ष उद्घाटित किया मैं चौंका! "इनमें एक भी नहीं जो पूर्ण भाव से मुझे जीवन-स्वामी के रूप में स्वीकार कर चुका है। मुझसे मेरे लिए प्रेम करता है। मेरे लिए जीता है। मानों, मुझे बिका हुआ

है। जिसके जीवन का आधार मैं हूँ। जो मेरे साथ तादात्म्य के बिना एक क्षण भी जीना नहीं चाहता। जो मेरे लिए प्रेमाग्नि में जल रहा हो। जिसका जीवन, जिसका प्राण मैं हूँ। जो मेरे दर्शन का प्यासा, मेरे अंदर निवास करने का अभिलाषी हो। मेरे कारण, मेरे लिए जी रहा हो। ये मेरी चेतना की, शक्ति की एक बूंद भी धारण करने में समर्थ नहीं हैं। समझ रहे हो। जिनके उद्धार की बात तुम कर रहे हो भीतर आत्मा में झांकने से, सत्य के सामने आने से कतराते हैं। जब इन्हें कहा जाता है कि अपनी सत्ता के सत्य में निवास संभव बनाओ, उसके विधान के अनुसार जीवन यापित करो, इनका अहंकार सम्मुख आता है। इनकी चेतना पर पर्दा पड़ जाता है। ये समझते हुए भी कुछ नहीं समझ पाते।

स्वभाव में परिवर्तन लाना, समर्पण करना, समर्पित जीवन जीना संसार में सबसे कठिन है। क्या मनुष्य इस तथ्य के प्रति सचेतन हैं कि उनके सहयोग के बिना उनके अंदर कोई परिवर्तन नहीं लाया जा सकता ! समय आ रहा है – अतिमानस इन्हें भीतर से तैयार करेगा। मनुष्य जागेंगे। सत्य की खोज को जीवन-लक्ष्य के रूप में निर्धारित करेंगे। सत्य के अनुसार जीवन यापित करना, कर्मों को, विचारों को उसके संकल्प की चरितार्थता का स्वरूप प्रदान करना लक्ष्य रूप में चुनेंगे।

भारत

(व्यक्ति की भांति देश की भी आत्मा होती है। अपने सर्वांगीण विकास के लिए उसे भी उत्थान-पतन की अवस्थाओं में से अपना मार्ग प्रशस्त करना होता है।

इससे पहले कि भारत के विषय में हम कुछ कहें – हमें समझना होगा कि भारत एक ऐसा देश है जिसके पवन में भी आस्तिकता भरी है। भारत माता के पावन पुनीत चरणों में नमन करने के पश्चात् ही हमें वह क्षमता प्राप्त हो सकती है कि हम इस देश का, इसकी संस्कृति का सही मूल्यांकन कर सकें, उससे पहले नहीं। यह एक अनधिकार चेष्टा होगी। सारहीन श्रम होगा।)

हे भारत, हे जगत श्रेष्ठ आर्य जाति ! तुझे स्वीकार करना होगा कि तूने भूलें की हैं। जो तेरे पतन का कारण बनी। तेरे पास ज्ञान का अथाह सिंधु था, किन्तु तूने उसकी अवहेलना की। उस दिव्य, अतुलनीय निधि की ओर से दृग फेरे। तेरे प्रताप का सूर्य गगन-मंडल में चमकता था, तप, त्याग, चरित्र के सम्मुख देवगण शीश झुकाते थे। बलिदानों की अमर गाथाएँ गायन कर ऋषि-देवर्षि अपने आपको धन्य समझते थे। तेरे पास उच्चतम आदर्श थे, तूने उन्हें बिसराया, उनकी उपेक्षा की। तू परम सत्य से युक्त था, जो कि सब अस्तित्वों का मूल है, उसकी चरितार्थता तेरे जीवन का, कर्मों का स्वरूप था, उच्च आध्यात्मिक क्षमताएँ तुझे उपलब्ध थीं, किन्तु तूने उन्हें अपनी

व्यक्तिगत तपस्या का फल माना, भागवत कृपा के प्रति कृतज्ञ होना आवश्यक नहीं समझा। और आंतरिक जीवन के स्थान पर पूर्णतः बाह्य, अहंकार और इंद्रियों के द्वारा चालित जीवन-प्रवाह में अपने आपको छोड़ दिया।

समय था जब तेरी मानसिकता आत्मा के आलोक से आलोकित थी। किन्तु तू धीरे-धीरे अभिमान के द्वारा अधिकृत हुआ। अहंकार की चालों को तू समझ नहीं पाया। विकृत तत्व तेरी चेतना में, वातावरण में प्रविष्ट हो गये। तू विश्व प्रकृति की अज्ञानमयी शक्तियों की ओर खुलता गया। और इस प्रकार रजोगुण से आच्छादित तेरी चेतना धूमिल हो गई। पृथकत्व की चेतना में निवास तेरा स्वभाव हो गया। सांसारिक सुख-वैभव में डूबा। योग-मार्ग का त्याग किया। विषय-भोगों को, विलासिता को गले लगाया। अंतर्प्रेरणा की ओर, आत्म-कल्याण की ओर, समाज के उत्थान की ओर तूने ध्यान नहीं दिया। श्रुतियों को उठा कर एक ओर रख दिया, मानवकृत शास्त्रों की ओर मुड़ा। उनमें तुझे रस प्राप्त होने लगा। पुरुषार्थ, तपस्या, समर्पण से युक्त शास्त्रोक्त मार्ग तज कर – जिसके द्वारा तेरे पूर्वजों ने सर्वोच्च सत्य को, सत्ता को पाया था – तूने देवी-देवताओं के पूजन में उनकी कृपा का पात्र बनने में अनुष्ठान जारी किये। ईश्वर के स्थान पर उन्हें समर्पित हुआ। नये मन्त्रों एवं तन्त्रों का आविष्कार किया। शीघ्र फल देनेवाले सरल मार्ग अपनाये।

फलस्वरूप पृथ्वी पर मानव का वेदोक्त कर्तव्य क्या है, धार्मिक कर्मों का स्वरूप क्या होना चाहिये तू पूर्णतः भूल गया। तेरा जीवन आत्मा के संकल्प की चरितार्थता न होकर, अहंकार की, इंद्रियों की इच्छाओं की पूर्ति मात्र रह गया। उसे ही तूने मानव-जीवन की संज्ञा प्रदान की। शरीर को, बाह्य व्यक्तित्व को ही अपना सच्चा स्वरूप समझा। इंद्रिय जीवन को ही मनुष्य का संपूर्ण जीवन माना। जिस वैदिक शिक्षा-सोपान से उठ कर तेरे पूर्वजों ने स्वर्ग को जय किया, तेरे अंदर महानता उद्घाटित हुई, तेरा प्रथम कर्तव्य होना चाहिये था उस ज्योति-स्तम्भ को पकड़े रहना, किसी भी परिस्थिति में उससे दूर नहीं होना, उसके स्थान पर किसी अन्य शिक्षा को ग्रहण नहीं करना।

अपने आपको श्रेष्ठ समझने के भाव में सदैव अहंकार की गंध होती है। वह मनुष्य को गिराती है। उसे निम्न स्तर पर खींच लाती है। उसके द्वारा तू अधिकृत हुआ। वहाँ से तेरी चेतना का, तेरे जीवन-स्तर का पतन संभव हुआ। जिनका आत्म-ज्ञान में प्रवेश नहीं था, उन्हें अपनी इच्छानुसार मोड़ना, उनका पथ-प्रदर्शन करना प्रारंभ किया। तेरे दृष्टिकोण में संकीर्णता आई। हृदय में स्वार्थ भाव जागा। चेतना में विभाजन उत्पन्न हुआ। तू सत्य से, आत्म-एकत्व की चेतना से दूर हुआ। तेरी दृष्टि में सारी मानव-जाति एक परिवार न रही। वृत्ति बहिर्मुखी हो गई। बाह्य यांत्रिक सत्ता को अपनी संपूर्ण सत्ता समझा, भीतर

आत्मा के बोध पर पर्दा पड़ गया। सुख-भोगों में अधिक से अधिक डूबे रहना तेरा जीवन था। तूने अपने आपको संसार की दूसरी जातियों से श्रेष्ठ समझा, महान घोषित किया, शासक बनने की वृत्ति तेरे अंदर जागी। जग-सेवक के भाव का, "सर्वभूतःहितेरताः" इस शास्त्र-वाचा का त्याग किया। तूने त्यागी, तपस्वी, आत्म-संयमी शूरवीरों के शिशुओं को आत्म-बल में प्रतिष्ठित न कर, योग-शक्ति से उनका परिचय न कराकर निम्न प्रकृति के मोहक रसपूर्ण प्याले उनके अधरों पर लगाये। वे सुरापान करते, तामसिक पदार्थ खाते, राग-रंग मन-बहलाव में मस्त रहने लगे। उनके हृदय पर अज्ञान का पर्दा पड़ गया। कर्तव्य के बोध से दूर हो गये। एक अखंड अद्वितीय शक्ति की बहुत प्रकार की प्रतिमूर्तियाँ बनती देखी गई। उनके द्वारा सरल-हृदय इस जाति की निष्ठाओं को मोड़ना, उन्हें विकृत करना प्रारंभ किया। वह भ्रांत-पथ पर अग्रसर हुई, विलासिता से पूर्ण जीवन में रमण करनेवाली निम्नगामी वृत्तियों में विचरना उसके जीवन का स्वरूप हुआ। क्षण-भंगुर सुख भोगों के नशे में शास्त्रोक्त कर्तव्य से विमुख होना उनकी नियति बनी।

तूने परमेश्वर की कृपा से उस अनंत चेतना को, शक्ति को प्राप्त किया था और प्राप्ति के पश्चात् यह जानना अनिवार्य नहीं समझा कि अब वह तेरे द्वारा क्या कराना चाहता है। किस

पथ से तुझे ले जाना चाहता है। एक सिद्ध पुरुष का क्या कर्तव्य होना चाहिये। तूने मनमानी की, गुरु बना, धर्मप्रवर्तक, आचार्य कहलाया और शिष्य-समूह का, आत्म-ज्ञान के जिज्ञासुओं का, अपने सीमित मानसिक ज्ञान के द्वारा, अपूर्ण, एकपक्षीय धारणाओं के द्वारा मार्गदर्शन प्रारंभ किया। यह तेरी भूल का सबसे क्षतिकर स्वरूप था।

तूने संसार में रहते हुए सब पाया था। तेरे पूर्वज यहीं थे। उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र को स्वीकार किया। उसका स्तर ऊँचा उठाया। उसे आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत किया। आत्मा की चेतना से, सत्य से, सामंजस्य से विभूषित किया। संसार के त्याग की शिक्षा उन्होंने नहीं दी। किन्तु, तूने संसार के त्याग का पाठ पढ़ाया। तेरी दृष्टि में तू सत्य था, तेरा दर्शन सत्य, तेरा पथ-प्रदर्शन सत्य रहा, और शेष सारा जगत मिथ्या। तू इसे मिथ्या प्रमाणित करने लगा। तू सत्य, तेरा ज्ञान सत्य और दूसरे सब मिथ्या, मायामय हो गये। तूने घोषणा की – "यह तन, यह मन, यह जग सब माया है, सब मिथ्या है।" जरा सोच ! फिर तू उससे बाहर केसे रहा ! अगर संसार मिथ्या है, प्राणिमात्र मिथ्या है, पृथ्वी और सूर्य मिथ्या हैं, तो फिर मिथ्या की घोषणा करने वाला भी तो मिथ्या होना चाहिए ! क्योंकि, वह मिथ्या शरीर में, मिथ्या मन के द्वारा, मिथ्या ज्ञान को ही तो घोषित कर रहा है। अगर सब माया है तो वक्ता एवं श्रोता, उनके पगों के नीचे की

भूमि, उनके शीश पर आकाश, सब मिथ्या, माया होने चाहिएँ। और जब सब माया है, मिथ्या है तब किसकी मुक्ति, मुक्ति का पथ किसके लिए ! किसके लिए उपदेश !

तेरी और भी कुछ भूलें हो सकती हैं। तेरे सम्मुख महान आदर्श थे। त्याग के, तपस्या के, दान के, अहंशून्यता के। तुझे अनुभव कराया गया कि, आत्मा भोगों से परे है और तू आत्मा है। तेरा सच्चा व्यक्तित्व आत्मा है। अतः तेरे हर विचार में, व्यवहार में, क्रिया में, आत्मा की चेतना, उसका स्वरूप, उसका दिव्य स्वभाव ही प्रकट होना चाहिए। लेकिन तू शारीरिक चेतना में पतित हुआ। अपने आप को देह समझने की भ्रांति में डूबा और विलासिता का मार्ग अपनाया। विलासिता में इच्छाएं ही प्रमुख होती हैं। उनकी तृप्ति हमारा जीवन और जीवन का लक्ष्य होता है। जहाँ हमारी इच्छा की पूर्ति में विघ्न पड़ता है, हमारे अहंकार को आघात पहुँचता है हम क्रोध करते हैं। ईर्षा-द्वेष में फंस जाते हैं। इसी से संघर्ष, कलह, युद्ध, परपीड़न, शासन करने की वृत्ति हमारे अंदर उमड़ती है। केसे भी दूसरों पर शासन करना चाहते हैं। कैसे भी उन्हें आकर्षित करते हैं। चाहे हमारा पुरुषार्थ मिथ्या से, पाप से, हिंसा से ओत-प्रोत हो। हम समाज को अपनी इच्छा के अनुसार चलाना चाहते हैं। जब तक मानव पूर्णतः प्रभु को समर्पित नहीं होता, अपनी सब उपलब्धियां, चाहे वे भौतिक हों अथवा आध्यात्मिक, प्रभु-चरणों में निवेदित नहीं करता, उसके

अंदर किसी न किसी रूप में अहंकार अवश्य रहता है। चाहे उसकी मात्रा कितनी भी कम हो, चाहे उसका स्वरूप कितना भी सूक्ष्म हो। आध्यात्मिक पुरुष का समाज को अपने ढ़ंग से मोड़ना, शिष्यों को शिक्षित करना, संसार को नया धर्म प्रदान करना, उसके नियम, विधि-विधान, रीति-रिवाज अपनी धारणा के अनुसार निर्मित करना – जो कि शासक का प्रजा के ऊपर मनचाहे नियम लागू करने में होता है – इन सबके पीछे अहंकार होता है, – चाहे परिस्थिति के अनुसार उसके रूप भिन्न हों, सूक्ष्म हों, किंचित् शुद्धता, विशालता लिए हों – यह अहंकार ही है। कब, किस युग में, संसार को कौन सा मोड़ देना, उसके विकास के लिए क्या हितकर है, यह केवल परमेश्वर ही जानते हैं। मनुष्य की सर्वोच्च बुद्धिमत्ता इसी में है कि परमेश्वर को आत्म-निवेदित रहता हुआ जीवन यापित करे। उनके आदेश-पालन को कर्तव्य रूप में निर्धारित करे।

अतः, कहता हूँ हे भारत ! अब जाग। मन-बुद्धि से निर्मित धारणाओं से ऊपर उठ। संस्कारों को पीछे छोड़ दे। उनकी छाप से मुक्त हो। धार्मिक हों या जातीय अथवा सांप्रदायिक इन सब परिधियों से बाहर आ, इनसे परे स्थित आत्मा की शरण ग्रहण कर। आत्मा के पथ-प्रदर्शन में तू निर्भूल पगों से, निर्भ्रांत पथ का पथिक होगा। इसी में तेरा और जगत का मंगल है। केवल आत्म-ज्ञान में, आत्म-चेतना में सब समाधान खोज। भले ही –

और यह प्रायः ही घटित होते देखा गया है – आत्म दर्शन के पश्चात् हमें ऐसा भासित होता है कि हमारे मन में जो भी विचार उठते हैं, उनका उद्‌गम आत्म-ज्ञान है, वे आत्म-चेतना से ओत-प्रोत हैं, आत्म-संकल्प को ही चरितार्थ कर रहे हैं – किन्तु यह हमारी भूल होती है, भ्रांत बौद्धिक धारणा है। मन-बुद्धि के ऊपर संस्कारों की, शिक्षा की, मत की, संप्रदाय की छाप रहती है। वे उससे मुक्त नहीं होते। अतः हमें इस तथ्य के प्रति सचेतन होना है कि जैसे ही कोई प्रेरणा आती है हमारा मनोमय पुरुष अपनी प्रकृति के अनुरूप उसकी धारण बना लेता है। हमारे विचारों में, कर्मों में उसकी अभिव्यक्ति होने के पूर्व ही, वह मिश्रित हो जाती है। अपना परिशुद्ध रूप खो बैठती है।

जब तक आत्मा के साथ हमारा तादात्म्य रहता है, हम आत्मा होते हैं। वहाँ किसी मिश्रण की संभावना नहीं होती। किन्तु, तादात्मय से बाहर आते ही हमारा अहंकार, हमारे मन को प्रभावित करना प्रारंभ कर देता है। हम आत्मा के होने के साथ-साथ, अपने पंथ के, मत के, संप्रदाय के तथा संस्कारों के हो जाते हैं। यही वह बिंदु है जो हमारी समस्या है। हमारे भावों में यह मिश्रण समस्या का वह रूप है, जिसका हल हमें खोजना है।

आत्म-साक्षात्कार, परमेश्वर को निश्शेष समर्पण ही कुंजी है। आत्मा से प्रेरित होकर जीवन-मार्गों पर चलने से, आत्म-आदेश-पालन को जीवन का स्वरूप प्रदान करने से हमारा

निवास सत्य में होता है। एक महान, उच्च, दिव्य सामंजस्य का अवतरण हमारे द्वारा संसार में संभव होता है। जो धरती पर मानव जीवन को औचित्य प्रदान करता है। कारण, तब यहाँ सब सत्यं शिवं सुन्दरम् की अभिव्यक्ति का रूप ग्रहण कर लेता है।

अगर तू अनुभव करता है कि तेरे अंदर अलौकिक क्षमता है, आत्म-ज्ञान में ऊँचा उठा है, ज्ञान सूर्य की किसी विलक्षण किरण को उपलब्ध कर पाया है, किसी महत्तर चेतना को अधिकृत किया है, अनन्त ज्ञान-सिन्धु की किसी नई तरंग में गोता लगाया है तो उसे चरितार्थ कर। उसके द्वारा मानवता के अज्ञान को तिरोहित कर। दुख-कष्टों का निवारण कर। आत्म-कलुष को, मानसिक संताप को पृथ्वी तल से धो डाल। किसी भी परिस्थिति के वशीभूत होकर प्राचीनतम श्रुतियों के प्रति भारत जननी की सरल-हृदय संतानों में घृणा का भाव उत्पन्न न कर। इस आसुरिक वृत्ति का त्याग कर दे। इस तथ्य के प्रति सचेतन बन – जब मानव में अहंकार शिखर पर उठता है, जब उसकी आत्मा पर पर्दा घना हो जाता है वह आसुरी शक्तियों के द्वारा अधिकृत हो जाता है। वे उसे सर्व प्रथम वेदों से, वैदिक संस्कृति से दूर होने की प्रेरणा प्रदान करती हैं। एक नये धर्म अथवा सिद्धान्त के लिए तैयार करती हैं। जगत गुरु होने का, भगवानश्री बनने का सपना उसके दृगों में संजोती हैं। श्रुतियों के प्रति, ऋषि-मुनियों के प्रति, हमारे आदर्शों के, सिद्धान्तें के, आचारों के प्रति उसके मन में अश्रद्धा उत्पन्न करती हैं। यह असुर का खेल है। वह इसी द्वार से मानव-हृदय में प्रवेश पाता है। तत्पश्चात् शनैः शनैः उसके मन आत्मा पर अधिकार कर लेता है।

जाग्रत आत्मा

मानव आत्मा पृथ्वी पर अवतरित होती है। हर जन्म में एक नये अनुभव की प्राप्ति लक्ष्य रूप में अपने सम्मुख रखती है। किन्तु मनुष्य इस लक्ष्य के प्रति सचेतन नहीं होते। आत्मा और उनके बीच दूरी होती है, एक पर्दा होता है। इस पर्दे के कारण आत्मा जो चाहती है, उसकी प्रेरणा, उसका संदेश हमारा मन ग्रहण नहीं कर पाता। हम मार्गदर्शन से वंचित रहते हैं। बिना मार्गदर्शक जीवन-मार्गों पर भटकना हमारी नियति होती है। जैसे बिना कुशल केवट के महासिन्धु में नौका। यही कारण है कि अधिकतम मनुष्य यथासंभव उन्नति नहीं कर पाते। वे जीवन के सामान्य स्तर से ही चिपके रहते हैं। तुच्छ-सी, साधारण-सी इच्छाओं की पूर्ति में जीवन के दिन पूरे करते हैं। अपने आपको शरीर समझते हैं, उससे पृथक् नहीं कर पाते। इंद्रियों की मांगों को अपनी मानते हैं। अतृप्त वासना में मृत्यु के समान दंश की व्यथा अनुभव करते हैं। अज्ञान निशा के विस्तृत आँचल के नीचे उनका जीवन पलता है। जिसका आंगन इच्छाओं के बीजों से उगी घास-फूस से आच्छादित रहता है। कुछ आशाओं को हृदय में पोषित किये, कामनाओं के जाल बुनते रहना ही उनके जीवन का स्वरूप होता है। आत्म-साक्षात्कार की सुनहरी उषा का आगमन, उसके स्वागत का सौभाग्य मानों उनके लिए नहीं

है। उनकी चेतना तमसिल होती है। जो शरीर, मन, इंद्रियों के परे किसी दिव्य तेजोमय व्यक्तित्व को, सत्ता के अन्य गभीरतर भागों को देखने में असमर्थ होती है। वे जैसे आते, वैसे ही चले जाते हैं। यही सामान्य मानव का जीवन है।

प्रत्येक व्यक्ति जो आत्मोन्नति के मार्ग पर पर्याप्त आगे बढ़ चुका है, एक महान, उच्च आदर्शों से पूर्ण जीवन को लक्ष्य रूप में चुनता है। उसके अन्दर आत्मा जाग्रत होती है, अपने कर्तव्य के प्रति सचेतन होती है। वह अपने संकल्प की चरितार्थता के लिए हमें तैयार करती है। आत्म-साक्षात्कार, अन्तस्थ देव के साथ तादात्म्य प्रथम कर्तव्य के रूप में चुनती है। उसके लिए हर आवश्यक त्याग करने को प्रेरित करती है। हम तपस्या से भरा जीवन बिताते हैं। हर बलिदान के लिए उद्यत रहते हैं। हर प्राप्ति के लिए मूल्य चुकाना हमारा स्वभाव होता है। लक्ष्य की सिद्धि में हर संकट को, हर बाधा को, हर अभाव को सहर्ष स्वीकार करते हैं। मानों हमारे अन्दर कोई यह जानता है कि परमात्मा हमारे द्वारा यही चाहते हैं, यही वह है जिसके लिए हम जन्मे थे। उसी में आन्तरिक संतुष्टि अनुभव करते हैं। चाहे इस चरितार्थता का बाह्य स्वरूप कष्टप्रद ही क्यों न हो ! हम बिना किसी गणना के – कि काँटे-पत्थर भी हो सकते हैं – छलांग लगाते हैं। आत्मा के द्वारा निर्दिष्ट लक्ष्य की पूर्ति में अनिवार्य हो तो गृहत्याग करते हैं, परिवार के मोह के बंधनों

को तोड़कर उनसे बाहर आते हैं। अज्ञात पथ पर, कल क्या होगा इसकी चिन्ता किये बिना, अनजानी दिशा में निकल पड़ते हैं। स्व-कर्तव्य की पूर्ति हित, जो कि आत्मा के द्वारा प्रदान किया गया है, उसे अधिक से अधिक सफलता एवं शीघ्रता के साथ फलीभूत करने के लिए सत्ता का हर भाग परमेश्वर को समर्पित करते हैं। मन, बुद्धि, शरीर एवं इंद्रियों को शिक्षित करते हैं। उनकी चेतना में, उनके स्वभाव में आवश्यक परिवर्तन लाते हैं। जीवन-धारा को ऊर्ध्वमुखी बनाते, बहिर्मुखी वृत्तियों का त्याग करते हैं। चित्त की वृत्तियों को एकाग्र करते, उसे प्रदीप की लौ का रूप प्रदान करते है। सांसारिक पदार्थों का जो मूल्य हमारी दृष्टि में चला आ रहा है हम उसी रूप में स्वीकार नहीं करते। उन्हें आध्यात्मिक चेतना में तोलते और यथोचित मूल्य प्रदान करते हैं। आध्यात्मिक दृष्टिकोण को आगे रख कर जीवन-मार्गों पर अग्रसर होते हैं। मानव-स्वभाव का अतिक्रमण करते हैं। उसकी तुच्छता, दुर्बलता, काम, क्रोध, लोभ, मोह हमें स्पर्श नहीं करते। सामान्य मानव-चेतना-स्तर को पीछे छोड़ते हुए एक दिव्य ज्योतिर्मयी मानसिकता में हम उठते हैं। वही हमारे कर्मों की प्रेरक होती है।

रीति-रिवाजों से बंधी रूढ़िगत धार्मिकता के द्वारा हम आध्यात्मिक चेतना में प्रवेश संभव नहीं बना सकते। यह आत्मा में निवास करनेवाला, आत्मा की विशालता में जीनेवाला हर व्यक्ति जानता है।

धर्म के पार

(हमारे आत्म-विकास में एक अवस्था आती है, जब हमारी आत्मा धर्म से, केवल धर्ममय जीवन व्यतीत करने से संतुष्ट नहीं होती। वह धर्म के मूल को – जिसे शास्त्रों में सृष्टि का मूल कहा है – जानना, उसे उपलब्ध करना लक्ष्य रूप में चुनती है।)

प्रवचन के पश्चात् कुछ व्यक्ति मिले। उनमें वह भी आया जिसके दृगों में गर्वित होने का भाव स्पष्ट गोचर हो रहा था, संतुष्टि चेहरे पर झलक रही थी। कारण, वह जानता था कि उसका जीवन धर्ममय है। उसके कर्म, उसका आचरण धर्म के अनुसार, धर्म की दिशा में, धर्म-सूत्रों की चरितार्थता है।

हम दोनों एक दूसरे के आगे झुके। हाथ मिलाये। आलिंगन में बंधे। मैंने उसके अंदर झांका। आश्चर्य ! व्यक्ति प्रसन्न था। किन्तु, उसकी आंतरिक सत्ता संतुष्ट नहीं थी। उसे शिकायत थी। "कितने जन्म हो गये यह इसी प्रकार धार्मिकता की परिधि में चक्कर काट रहा है। इससे ऊपर किसी दिव्य, ज्योतिर्मय चेतना-स्तर पर उठने की अभीप्सा इसमें नहीं जाग रही है। जहाँ मनुष्य मार्गों का, कर्मों का चुनाव स्वयं न कर अंतस्थ देव के कर-कमलों में छोड़ता है, परमेश्वर को समर्पित होकर जीवन यापित करता है, भागवत संकल्प की चरितार्थता उसके जीवन का स्वरूप होता है। जहाँ वह समझता है कि

मानव आत्मा जो कर्तव्य अपने हृदय में धारण कर पृथ्वी पर अवतरित होती है वह धर्म-पालन मात्र नहीं है, केवल धार्मिक व्यक्ति बनना नहीं है। यह विचार श्रेष्ठ होते हुए भी कि धर्म किया तो सब हो गया सर्वोच्च चेतना की अभिव्यक्ति नहीं है। यह आदर्श, चरम आदर्श नहीं है कि धर्ममय जीवन बिताने से आगे कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता। मनुष्य को समझना है कि धर्म एक मार्ग है। धर्म-पालन उत्तम कर्म है। श्रेय-पथ है। धर्म उसे महानतम उपलब्धि के लिए तैयार करता है किन्तु, चरम अस्तित्व के साथ तादात्म्य संभव नहीं बना सकता, जो कि मानव का परम कर्तव्य है। उसे इस लक्ष्य के प्रति सचेतन होना है कि एक नई चेतना संसार में अवतरित हुई है। सृष्टि-विकास-क्रम में नया सोपान युक्त हुआ है। मानव अतिमानव में विकसित होने जा रहा है। जो कि एक दिव्य मानव होगा। विश्व पुरुष की चेतना में निवास उसके लिए स्वाभाविक होगा। जैसे मानसिक चेतना में निवास मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। अतिमानव पूर्णतः अज्ञानमुक्त होगा। दिव्य क्षमताएँ उसके कर्मों में प्रवाहित होंगी।"

हमें नई दिशा में जागना है। नये अभियान प्रारंभ करने हैं। अपने चिन्तन में नई दिशा लानी है। भूतकाल को सोपान बना कर, मानसिक चेतना का अतिक्रमण कर, अतिमाानसिक चेतना में उठना है। धरती पर एक नये समाज की रचना करनी

है। जो समाज वर्तमान का ही एक परिशोधित रूप नहीं होगा, वरन् आध्यात्मिक चेतना से ओत-प्रोत, उससे प्रेरित-चालित होगा। जिसमें मानवकृत धर्मों के लिए स्थान नहीं रहेगा, न मनुष्य जाति किन्हीं धर्म-गुरुओं को, आचार्यों को, अवतारों को, पैगम्बर और मसीहों को परमेश्वर का स्थान प्रदान करेगी। हम आत्मा के द्वारा, पदार्थों के अंतर्निहित सत्य को दृष्टिकोण में रख कर जीवन-मार्गों पर अग्रसर होंगे। मनुष्य आत्म-सत्य में, आत्म-चेतना में उठेंगे, आत्म-एकत्व को, आध्यात्मिक चेतना को आधार बना कर समाज का नव-निर्माण करेंगे। उसे नया स्वरूप प्रदान करेंगे। जिसका स्वरूप सदा विकसित होता रहेगा। उसमें भागवत प्रेम, शांति तथा सामंजस्य के तत्व मिश्रित होते रहेंगे। उच्च चेतनाओं की खोज, उनमें आरोहण, उनका अवतरण सदा संभव रहेगा। मनुष्य की सामूहिक चेतना उत्थान लाभ करेगी। सत्य के प्रति उद्घाटित होगी। आत्मा की विशालता में, उसकी अमरता में, दिव्यता में अपना निवास संभव बनायेगी।

आज संसार में ऐसे अनेक संप्रदाय, ऐसी जातियाँ देखने को मिल रहीं हैं जो परमेश्वर की ओर न मुड़ कर, आत्म-सत्य का साक्षात्कार न कर केवल धार्मिक होने में जीवन की सफलता समझ रही हैं। मनुष्य नहीं समझता कि यह उसका मनोमय पुरुष है जो जन्म-जन्मांतरों के संस्कारों के द्वारा अधिकृत है। उसके हृदय पर संस्कारों का पर्दा इतना घना है कि वह आत्मा

की आवाज सुनने में, इसके परे किसी मनसातीत सत्य को देखने में समर्थ नहीं है। यही कारण है कि वह धार्मिक-शास्त्रों के परे, आचार्यों की चेतना से ऊपर किसी देदीप्यमान दिव्य चेतना को, अतिमानस-सूर्य को नहीं देख पा रहा है, जिसकी प्रथम किरण भूतल पर पड़ चुकी है। जिसके नये प्रकाश ने पृथ्वी के आंगन को प्रकाशित करना, मानव-चेतना-स्तर को ज्योतिर्मय बनाना प्रारंभ कर दिया है। जिसमें पदार्थों एवं प्राणियों का नया – उनका यथार्थ स्वरूप – हमें गोचर हो रहा है। उनके भीतर से आत्मा की दिव्यता, उसका माधुर्य अपनी अभिव्यक्ति के लिए प्रयासरत है।

हे प्रभो ! उनकी चेतना परिवर्तित कर। उसे नये आलोक से, अतिमानस की दिव्यता से भर दे। जो आध्यात्मिक जीवन के नाम पर प्राणिक प्रकृति की मांगों की पूर्ति में शक्ति तथा चेतना का व्यय कर रहे हैं। जो आत्म-साक्षात्कार को, आत्म-उपलब्धि को जीवन-लक्ष्य के रूप में निर्धारित न कर कुण्डलिनी शक्ति जागृत करने की शिक्षा देते हैं, आत्म-संयम का पथ न अपना कर जागरुक रहते हुए इंद्रिय भोगों में विचरण करने की बात करते हैं। आत्मा को समर्पित जीवन न बिता कर हर चुनाव, हर निर्णय स्वयं लेते हैं। जीवन की व्यवस्था को इच्छानुसार स्वरूप प्रदान करते हैं। सृष्टि में, प्रभु के इस भव-उपवन में दिव्य माली का हाथ न बंटा कर शांति, मुक्ति अथवा निर्वाण की खोज करते हैं।

जीवन-कला

पृथ्वी पर मानव-जीवन एक रहस्यपूर्ण कला है। जिन्हें इस कला का ज्ञान नहीं वे जीवन को सार्थक बनाने में, उसका सही उपयोग करने में समर्थ नहीं होते। उनके लिए मृत्यु एक ध्रुव-सत्य है। प्रकृति के नियम अटल होते हैं। समय से पूर्व उनके जीवन का सूर्य अस्त हो जाता है। उन्हें न चाहते हुए संसार त्यागना होता है। जो जीवन-विज्ञान का शास्त्रानुसार शिक्षण प्राप्त करते हैं वे मृत्यु को लांघ जाते हैं। अपनी सत्ता के आंतरिक तथा बाह्य सभी स्तरों पर सचेतन रहते हैं और शरीर रूपी पिंजरे से, मन, शरीर, इंद्रियाँ रूपी बाह्य यांत्रिक सत्ता से अपने आपको पृथक् करने में सफल होते हैं। आत्मा के साथ तादात्म्य, उसमें निवास उनकी स्वाभाविक स्थिति होती है। वे मुक्त कहलाते हैं। आत्मा के अमरत्व पर उनका अधिकार है। शरीर के रहते अथवा इसके विच्छेद के पश्चात् भी वे पृथ्वी के वातावरण में अथवा इसके परे, अन्य स्तरों पर स्वतंत्रता पूर्वक विचरण करने में समर्थ होते हैं। व्यक्ति-सत्ता तथा विश्व-सत्ता के हर स्तर पर सचेतन होना मानव की सर्वोच्च बुद्धिमत्ता है।

अमरत्व में निवास हमारी स्वाभाविक स्थिति है। जन्म-मरण हमारे ऊपर थोपी हुई स्थितियाँ हैं। इनका कारण हमारे भीतर है। हमारी व्यक्ति चेतना है। उसकी सीमितता है। आत्म-अज्ञान में

अर्थात् पृथकत्व की चेतना में निवास है। जो आत्मा में जाग जाते हैं, उसका साक्षात् करते हैं, उसकी चेतना में निवास संभव बनाते हैं, ऐसे आत्म-ज्ञानी पुरुष मुक्ति के अधिकारी हैं। वे शरीर रूपी इस भवन के स्वामी हैं। शासक हैं। दूसरे, जिन्होंने आत्म-साक्षात्कार नहीं किया, जो शरीर से अपने आपको पृथक् नहीं कर सकते उन्हें प्रकृति की दासता भोगनी पड़ती है। उसकी इच्छा के अनुसार चलना होता है। एक योगी का, आत्मा में सचेतन व्यक्ति का इतिहास पृथक् है। शरीर हो या मन दोनों को उसका आदेश पालन करना होता है। भोगी पर दोनों शासन करते हैं। वह आजीवन उनके अधीन रहता है।

यहाँ हम इतना और कह देना चाहेंगे – सामान्य चेतना में निवास करनेवाले व्यक्ति की हर इच्छा – जिसे वह अपनी समझता है – विश्व-प्रकृति की शक्तियों के संकल्प की चरितार्थता होती है। हमारी प्रत्येक इच्छा का उद्गम वे होती हैं। अगर मनुष्य इस तथ्य के प्रति सचेतन हो जायें, और वह तभी संभव है जब हम आत्मा में स्थित हों, व्यक्तिरूपी भवन के दास नहीं वरन् स्वामी हों – तब हम तटस्थ होते हैं और प्रकृति की दासता से मुक्त रहते हैं, अन्यथा मानव प्राणी की मानसिक सत्ता में कोई भी विचार प्रवेश कर उसे यंत्र बना सकता है। वह एक सार्वजनिक स्थान की भांति होती है। वहाँ जो चाहे आये, जाये, विचरण करे।

आध्यात्मिक व्यक्तित्व

अगर दिन का एक बहुत बड़ा भाग ध्यान में बिताता हूँ, अधिक से अधिक समय जप-स्वाध्याय में व्यतीत करता हूँ, चाहे मैं आसन, प्राणायाम आदि नियमित रूप से करता हूँ, रात्रि का भी अधिक भाग साधन-भजन में लगाता हूँ, हल्का भोजन करता हूँ, इंद्रियों पर संयम रखता हूँ। आचरण में सत्यता है। विचार तथा कर्म धर्ममय हैं। इतना सब करने पर भी यह अनिवार्य नहीं कि मैं एक आध्यात्मिक व्यक्ति हूँ। कारण, यह सब मैं अपने ढंग से करता हूँ। यह चुनाव मेरा है। जबकि शास्त्रों के अनुसार आध्यात्मिक व्यक्ति वह है जो आत्मा में निवास करता है, आत्मा में सचेतन है, बाह्य सत्ता को, मनोमय, प्राणमय, अन्नमय इन पुरुषों को अपने से पृथक् देखने में समर्थ है। इनकी चेतना को ऊर्ध्वमुखी कर चुका है। जिसकी प्रकृति पूर्णतः शुद्ध है, पारदर्शक है अर्थात् सारी सत्ता आत्मा के सत्य से ओत-प्रोत है। जिसे इच्छाएँ नहीं चलातीं। इनकी पूर्ति में उसकी शक्ति एवं चेतना व्यय नहीं होती। उसके जीवन का बड़ा भाग नष्ट नहीं होता। जीवन-नौका की पतवार परमात्मा के दिव्य कर-कमलों में है। सब उनकी इच्छा के अनुसार चालित होता है। उनके संकल्प की चरितार्थता है। जिस व्यक्ति में अहंकार का स्थान आत्मा ग्रहण कर चुकी है।

आत्म-आदेश-पालन को छोड़कर दूसरी कोई इच्छा जिसके हृदय में नहीं उठती। जिसका जीवन सत्यमय है। सत्य की अभिव्यक्ति है। सत्य ही जिसके जीवन का आधार है। परमात्मा को पूर्ण रूपेण समर्पित, जो स्वयं कोई निर्णय नहीं लेता, सब चुनाव प्रभु के हाथों में छोड़ देता है, जिसकी अन्दर-बाहर सारी सत्ता प्रदीप की लौ का रूप धारण कर चुकी है, ऐसा आत्मा की विशालता में निवास करनेवाला, आत्मा में सबको, सबमें आत्मा का दर्शन करनेवाला व्यक्ति आध्यात्मिक होता है।

आत्म-रूप वे प्रदीप धन्य हैं जो दूसरों के लिए जलते हैं। वे भी धन्यता के पात्र हैं जो बुझे हुए प्रदीपों को प्रज्ज्वलित करते हैं। वे मानव पूज्य हैं जो भव-सागर में कर्णधार बनते हैं। उन व्यक्तियों के प्रति हम किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट करें ज़ो मानव-जाति को दुख-कष्टों से उबारने का, इसे आत्मा की मुक्त चेतना में उठाने का प्रयास करते हैं। इस महान कर्म के लिए अपने सर्वस्व का, अपनी उच्चतम उपलब्धियों का बलिदान करते हैं। भव-उपवन का वह प्रत्येक पुष्प जो अपनी सुवास सर्वत्र बिखेरता है, सबके आकर्षण का केन्द्र होता है। सब उसे स्नेह भरी दृष्टि से निहारते हैं। ऐसे हर मानव का जन्म एवं जीवन धन्य है जो संसार के उपकार के लिए जीता है।

आध्यात्मिक पुरुष का वातावरण

तेरे समीप आकर व्यक्ति शांति अनुभव करें, उन्हें स्पष्ट अनुभव हो कि दिव्यता से ओत-प्रोत, पवित्रता से भरपूर वातावरण तेरे चहुँ ओर व्याप्त है। उसमें प्रवेश करते ही वे हल्के हो जाते हैं। मानों, उनके सिर पर एक बोझ था और वह किसी ने उतार दिया है। तेरे स्पर्श में ऐसी अलौकिक क्षमता हो कि उनमें जागृति आये। दिव्य चेतना प्रस्फुटित हो। वे आत्म-शक्ति अनुभव करें। उन्हें यह विश्वास हो जाये कि असंख्य संभावनाओं का सिन्धु उनके भीतर है, जो उनकी पहुँच के अंदर है। वे जब चाहें उसका उपयोग कर सकते हैं।

तेरी उपस्थिति प्रज्ज्वलित अग्नि के समान हो। जो हृदय-तम को नष्ट करने में समर्थ हो। मनुष्य सत्य के लिए सब कुछ करने को, सर्वस्व की भेंट चढ़ाने को भीतर से उद्यत हों। आत्मा के संकल्प को जीवन में, कर्मों में चरितार्थ करने की, कर्तव्य-पालन की प्रेरणा से उनके हृदय तरंगित हो उठें। उनमें नया उत्साह जागे। नई उपलब्धियों के लिए अभीप्सा उत्पन्न हो। वे समझें कि आत्मा सुख-भोग के लिए संसार में नहीं आती। दूसरों का दुख अपने ऊपर लेने के लिए, संसार में दुख के बने रहने के कारण को मिटाने के लिए, भूतल को आत्मा के आनंद से परिप्लावित करने के लिए उसका आगमन होता है।

चिन्तन की नई दिशा

हम एक मनोमिर्मित सिद्धान्त के स्थान पर दूसरा मनोनिर्मित सिद्धान्त स्थापित कर मनुष्य जाति के लिए आत्मा की मुक्त चेतना में उत्थान लाभ करने का द्वार उद्घाटित नहीं कर सकते हैं। मानसिक सिद्धान्त का अनुसरण किसी दिव्य स्तर पर आरोहण करने का शास्त्रोक्त उपाय नहीं है। हम भिक्षुओं के समूह के स्थान पर संन्यासियों के समूह को प्रतिष्ठित कर अपनी अब तक की चली आ रही सामाजिक समस्या का स्थायी समाधान उपलब्ध नहीं कर सकते। सामूहिक रूप में मानव-चेतना-स्तर को ज्योतिर्मय बनाने का, इसे आत्मा की दिव्यता से ओत-प्रोत करने का यह अयौक्तिक, अव्यावहारिक रूप होगा। अपने प्रयास में हम अनिवार्यतः असफल सिद्ध होंगे। संसार में उत्थान लाने का, मानव-जीवन-स्तर को अज्ञान अंधकार से मुक्त कर उसे आत्मा की ज्योति में रूपांतरित करने का महानतम आदर्श जो हम अपने सम्मुख रख कर चल रहे हैं, संसिद्ध नहीं होगा। संसार के उद्धार का कार्य, मानव को आंतरिक स्तर पर जागृत करने का भार हम भिक्षुओं अथवा संन्यासियों पर नहीं डाल सकते और जीवन एवं कर्म के प्रति उपरामता का भाव रखनेवाले वे परम त्यागी स्वतः इस भीषण कर्म को अपनायेंगे, ऐसी आशा भी हमें



उनसे नहीं करनी चाहिये। कारण, एक ओर उनकी दृष्टि में जगत मिथ्या है, दूसरी ओर कर्म में प्रवृत्त होना अज्ञान है। ऐसी स्थिति में पुरुषार्थ के लिए स्थान कहाँ !

हे मानव ! तुझे अपने चिन्तन में और ऊँचा उठना होगा। उपलब्ध चेतना-स्तरों के पार आरोहण करना होगा। उनकी दिव्यता का अवतरण यहाँ, मानव-जीवन में संभव बनाना होगा। कर्म का त्याग नहीं, शांति, मुक्ति अथवा निर्वाण की अभिलाषा नहीं मानव-स्वभाव का, उसके जीवन का रूपांतरण, आत्मा की दिव्यता में उसका दिव्यीकरण लक्ष्य रूप में चुनना होगा। तभी हमारी व्यक्तिगत तथा समाजगत समस्याएँ समाधान लाभ करेंगी। संसार का जीवन सुखी होगा।

धरती माता के आंगन में नित नूतन उज्ज्वल उषाओं का आगमन हो रहा है। परा चेतना सृष्टि में सतत अवतरित हो रही है। उसके और सृष्टि के मध्य कभी दूरी नहीं आती, न आ सकती है। सृष्टि सदैव परा चेतना के अंदर है और परा चेतना इसके कण-कण में समायी है।

नई संतति नई चेतना के साथ जन्म ग्रहण कर रही है। हम देख रहे हैं वह प्राचीन प्रकाश से, आध्यात्मिकता के वर्तमान स्वरूप से संतुष्ट नहीं है। वह उसे सोपान बना कर, नई चेतना के, अतिमानसिक चेतना के आधार पर – जो कि पिछली शताब्दी में संसार में अवतरित हुई है – आध्यात्मिकता को

नया स्वरूप प्रदान करेगी। जिसमें मानव-कृत शास्त्रों का, धर्मों का स्थान अंतर्सत्ता के सत्य की अभिव्यक्ति ग्रहण करेगी। समाज का वर्तमान स्वरूप परिवर्तित होगा। मनुष्य की सामूहिक चेतना उत्थान लाभ करेगी। वर्तमान सामाजिक परिधियों से, धार्मिक एवं सांप्रदायिक रूढ़िगत परम्पराओं की निस्सारता से ऊपर उठेगी। आनेवाले समय को हम अतिमानसिक युग की संज्ञा प्रदान कर सकते हैं। जिसके सुनहले सूर्य का उदय हमें आगामी दिव्य उषाओं की पंक्ति में पृथ्वी के वातावरण के समीप ही गोचर हो रहा है। जिसके दिव्य प्रकाश में सनातन पुरुष की सत्ता का अनंत आनन्दमय सिन्धु मानव चेतना में, धरती के आंगन में, इन जड़ प्रतीत होनेवाले पदार्थों में प्रवाहित होते हम देखेंगे, और साथ ही समझेंगे केसे इस सृष्टि में वह पुराण पुरुष स्वसंकल्प के द्वारा, स्व-सत्ता में, स्व-सत्ता के लिए नित नूतन रूप निर्मित करता हुआ इन्हें धारण किये एक सतत अंतहीन प्रवाह के रूप में अपने अंदर गतिमान है, गन्तव्य की ओर लिये जा रहा है। गन्तव्य – जो कि वह स्वयं है।

समाज की बागडोर, उसके मार्गदर्शन का उत्तरदायित्व यदि हम उन व्यक्तियों के हाथों में सौंपेंगे जो संसार को परमेश्वर की आत्म-अभिव्यक्ति न मान कर इसे मिथ्या, माया की रचना, प्रपंच, निरर्थक पदार्थों का एक सिलसिला समझते हैं तो आनेवाली संतति हमें क्षमा नहीं करेगी। उनके द्वारा हम अव्यावहारिक, अनुभव में अपरिपक्व घोषित किये जायेंगे।



पुत्रोऽहंपृथिव्या

अगर सच्चा देशप्रेमी होना चाहता है तो परिवार का मोह त्याग दे। सीमित व्यक्ति-चेतना की परिधि से ऊपर उठ। हृदय की सांत्वना के लिए इतना जानना पर्याप्त है कि धरती माता की गोद में पलनेवाले ये सब परिवार एक हैं। एक ही विश्व पुरुष इनमें निवास करता है। एक ही परमेश्वर की हम सब संतान हैं। तू अपने परिवार को उतना ही चाहेगा जितना दूसरे परिवारों को। इससे भी अधिक, अगर तू भीतर से संसार का उपकार करने की प्रेरणा अनुभव कर रहा है और देश-सेवा तुझे एक सीमित वस्तु, एक संकीर्ण चेतना की अभिव्यक्ति अनुभव होती है, तब उठ और संसार के उद्धार के अभियान की तैयारी कर ! अगर तू मानवता का हितैषी है और मानवता के लिये, उसके जीवन-स्तर में उत्थान लाने के लिये संकल्प ले चुका है, अगर तू नर में नारायण का पुजारी होना चाहता है, अगर तेरी आत्मा तुझे सृष्टि में सबसे महान वरदान के लिये तैयार करना चाहती है, सर्वोच्च लाभ के लिये तेरा हृदय-द्वार खोलना चाहती है, – जो कि पृथ्वी पर भागवत यंत्र होना है – तो देश-सेवा के साथ-साथ मानवता की सेवा लक्ष्य रूप में चुन ! संसार का भार उठाने का संकल्प ले। मानव मात्र को सुखी करना तेरा कर्तव्य होगा। मानवता ही तेरा धर्म होगा। मानवता में ईश्वर तेरी पूजा के आराध्य देव होंगे। मानव हित समर्पित जीवन, जग-मंगल रूपी इस महान यज्ञ में तेरी आहुति का स्वरूप होगा। वही तेरे जीवन को यथार्थ अर्थवत्ता प्रदान करेगा।

* * *

हमारे अन्य प्रकाशन

अभीप्सा त्याग समर्पण शब्द मात्र नहीं, आंतरिक सत्ता की स्थितियाँ हैं। इनमें से प्रत्येक को उसकी पूर्णता में संसिद्ध करना, सर्वांगीण बनाना, अर्थात् सत्ता के हर अंग की चेतना को उस स्तर पर उठाना – जहाँ वह आत्मा की द्युति से द्योतित, उसमें रूपांतरित हो जाती है – श्रीअरविन्द के अतिमानसिक योग में अनिवार्य चरण है। "दिव्य जीवन की ओर" उच्च चेतना में निवास का महत्व समझाती है। हृदय को आवरणहीन बनाने की, चेतना को प्रदीप की लौ का रूप प्रदान करने की प्रक्रिया सिखाती है। व्यक्ति को सचेतनता में उठाने का प्रयास ही इस पुस्तक का मूल विषय है।

(अंग्रेजी में भी उपलब्ध) मूल्य : ४० रु०

अतिमानस क्या है ! इसे सरल, बोधगम्य बनाने का प्रयास है "अतिमानस की ओर"। मूल्य : ५० रु०

मनुष्य की संपूर्ण सत्ता का अतिमानस की ज्योति में रूपान्तर संभव है। रूपान्तर के विषय में हमारी धारणा सुस्पष्ट हो, इसी का प्रयास है, "रूपान्तर की ओर"। मूल्य : ५०रु०

आध्यात्मिकता अपने शुद्धतम स्वरूप में जगत का त्याग नहीं करती। वरन्, आत्मा की दिव्यता में उसका रूपांतर संभव बनाती है। इसी विषय की चर्चा है "आध्यात्मिकता का नया स्वरूप"। मूल्यः ५०रु०

भावी क्रांति आध्यात्मिक होगी, मानव मानसिक चेतना से ऊपर उठेगा। अतिमानसिक चेतना उसके लिए स्वाभाविक होगी। इसी विषय का विस्तार है 'भावी क्रांति का स्वरूप'। मूल्य : ५०रु०

मनुष्य की व्यक्तिगत तथा समाजगत सभी समस्याओं का समाधान वेद है। उसके जीवन में वेदों की उपयोगिता समझाने का प्रयास – यही सब सामग्री "वेद-चक्षु" नामक पुस्तक में उपादान कारण बनी है। मूल्य : १५रु०

नया समाज, जिसे हमने "भावी समाज" कहा है, जो कि मानवता की भावी नियति है, अतिमानसिक चेतना पर आधारित एक नई आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत होगा। नई आध्यात्मिकता जीवन और जगत का त्याग नहीं करेगी। वरन्, उन्हें स्वीकार कर आत्मा के आलोक से आलोकित करेगी। प्रचलित धर्म अतिमानसिक विधान को समर्पित हो जायेंगे। जो व्यक्ति नये समाज का मार्गदर्शन करेंगे, आत्म-सत्य में निवास उनका स्वाभाविक चेतना स्तर होगा। वे प्रचलित धर्मों से, प्रथाओं से, संप्रदायों से ऊपर होंगे। अतिमानसिक चेतना का प्रकाश उनका प्रथ-प्रदर्शक होगा, जीवन का, कर्मों का आधार होगा। मानव एक ऐसी दिव्य विशालता में आरोहण करेगा, जहाँ स्वार्थ भाव से, जातीय तथा साम्प्रदायिक अहंकार से मुक्त होगा। नया समाज वर्तमान समाज का संशोधित रूप नहीं होगा। इसी विषय की विशद चर्चा है "भावी समाज"। मूल्य : ३० रु०

"विचार संग्रह" मन सीमा के पार विशाल नभ में एक उड़ान है। जहाँ चेतना अपने पंखों को पूरा खोलने में समर्थ होती है। मूल्य : ३० रु०

"नये बीज" धर्मों में, समाजों में, संप्रदायों में सामंजस्य उत्पन्न करने का नया प्रयास है। जिसका आधार आध्यात्मिकता है। इसमें उन सब तत्वों को दर्शाया गया है जो समाजों के अंदर असामंजस्य उत्पन्न करते हैं। मूल्य : २५ रु०

हमारा जीवन, हमारे विचार, हमारे कर्म, यहाँ तक कि छोटी से छोटी क्रिया भी आत्म-सत्य की, आत्म-चेतना की अभिव्यक्ति होनी चाहिये। इस समय हमारे अंदर, हमारी चेतना में अहंकार के भावों का, उसकी इच्छाओं का मिश्रण है। सचेतन होकर हम इस मिश्रण से ऊपर उठ सकते हैं। ये पुस्तकें सचेतन बनना सिखाती हैं। कौन-सी इच्छा सत्ता के किस भाग में उठ रही है, हम किस शक्ति के प्रभाव में हैं, सचेतन व्यक्ति स्पष्ट देख सकता है।

संसार का जीवन शांतिमय, सामंजस्यपूर्ण बनाने के लिए हमें समूह की चेतना में उत्थान लाना होगा। उसमें विशालता का प्रवेश संभव बनाना होगा। दृष्टिकोण को परिवर्तित करना, उसे

आध्यात्मिक चेतना से ओत-प्रोत करना होगा। हमें खोजना होगा कौन से वे तत्व हैं जो समाज की चेतना में विभाजन उत्पन्न करते हैं और कौन से वे अन्य होंगे जो उसे एकता के सूत्र में बांधने में सहायक होंगे।

सचेतन व्यक्ति ही आत्मा की मुक्त चेतना में निवास संभव बना सकता है। आत्मा में निवास करते हुए अपने कर्तव्यों का पालन कर सकता है। बाह्य रूप से व्यस्त होते हुए भी, आत्मा की शांति में, नीरवता में डूबा रह सकता है। सचेतन व्यक्ति अपनी सत्ता का, प्रकृति का स्वामी होता है। अपने चारों ओर की परिस्थिति को नियंत्रित करना उसके लिए स्वाभाविक होता है।

शास्त्रों की दृष्टि में जीवन क्या है, किस लिए है, उसका स्वरूप कैसा होना चाहियें, सच्ची सफलता किसे कहते हैं, वह कैसे प्राप्त होती है, इसी विषय की चर्चा इन पुस्तकों में हैं। जिन्होंने आत्म-साक्षात्कार को लक्ष्य रूप में चुना, किन्तु किन्हीं कारणों से, वे चाहे आंतरिक हों या बाह्य, मार्ग तय नहीं कर सके, जो चेतना के उच्च तथा निम्न स्तर के मध्य संघर्षरत हैं, जिनकी सत्ता में मिश्रण है, गति पूर्णतः ऊर्ध्वमुखी नहीं हुई ; स्वार्थ, लोभ, मोह तथा भोगों की अंधकार भरी राहों पर भटक रहे हैं ; उनके लिए ये पुस्तकें उपयोगी सिद्ध होंगी। — ले०

प्राप्ति स्थान :— SABDA श्रीअरविन्द बुक्स डिस्ट्रीब्यूशन एजेंसी, श्रीअरविन्द आश्रम, पांडिचेरी—२


महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी
पु० सं० 2156
भारती पुस्तकालय


2156

हमने अध्ययन किया, अनुभव किया – आध्यात्मिक जीवन ही सही, सच्चा मानव-जीवन है। अहंकार के द्वारा प्रेरित-चालित जीवन भटकन है। इंद्रियों की इच्छाओं की पूर्ति जीवन का पाशव स्तर है। आवेगों एवं प्रतिक्रियाओं से भरा जीवन अंधकारमय है। उसमें श्रेय-पथ दूर रहता है, जीवन का सुफल अप्राप्त। जब हम जाग जाते हैं, आत्मा के प्रति सचेतन हो जाते हैं तब, पहला कार्य जो हम करते हैं वह होता है जीवन-दिशा का, मार्ग का परिवर्तन। अचेतन के स्थान पर सचेतन, भौतिक के स्थान पर आध्यात्मिक जीवन में उत्थान।

हमने जीवन में कितनी उन्नति की, दिव्यता में प्रवेश कहाँ तक संभव बनाया, स्वभाव में आये परिवर्तन से हम जान सकते हैं। स्वार्थ के स्थान पर व्यवहार में सत्यता, प्रेम एवं समता का प्रतिबिम्बित होना उसका बाह्य, प्रत्यक्ष प्रमाण होगा।

– सुखवीर आर्य

हे प्रभो ! मेरा विश्वास है कि समय आ गया है। तू चाहता है संसार का वातावरण सामंजस्यपूर्ण हो। मनुष्य जागें। एकत्व में निवास का महत्व समझें। उसे जीवन में चरितार्थ करें। यही कारण है मेरे भीतर यह प्रार्थना उठ रही है कि मैं उन सबका आह्वान् करूं जो संसार का वातावरण सामंजस्यपूर्ण देखना चाहते हैं और उनसे निवेदन करूं कि जितना शीघ्र संभव हो वे साम्प्रदायिकता से बाहर आयें। अपने दृष्टिकोण को विशाल बनायें। संसार के जीवन को सुखी बनाने का संकल्प लें। यह विचार उनके लिए जीवन्त हो उठे। उनकी आत्मा की आवाज के रूप में उन्हें अधिकृत करे। इसकी पूर्ति में संलग्न हुए बिना, इसकी सम्पन्नता का स्वप्न साकार किये बिना वे चैन से न बैठें। उच्च चेतनाओं का निर्मल जल उन पर वर्षण करे, हृदय में स्थित दिव्य चेतना का उत्स उनके जीवन में प्रवाहित हो। वे समझें मानव मात्र तेरी संतान है। हम सब एक हैं। हमारे अंदर जीवन एक है। एक धरती माता की गोद में हम पल रहे हैं। विभाजन भ्रांति है। अपने आपको दूसरों से पृथक् देखना अज्ञान है। अपने सच्चे व्यक्तित्व के रूप में अहंकार को स्वीकार करना सब दुखों का मूल है। हमें चाहिये कि जितना शीघ्र हो इस भ्रांति से बाहर आयें और आत्म-एकत्व की चेतना में अपना निवास संभव बनायें। तब निश्चय संसार का वातावरण आनंद से भर उठेगा।

सुखवीर आर्य

Rs. 30.00